बी.ए.(प्रोग्राम) सेमेस्टर–II संस्कृत

# DISCIPLINE SPECIFIC CORE COURSE-2
# SANSKRIT PROSE
## Survey of Sanskrit Literature : Prose
(संस्कृत गद्यकाव्य का सर्वेक्षण)

अध्ययन सामग्री : अन्विति-V एवं अन्विति-VI

मुक्त शिक्षा विद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

संस्कृत–विभाग
सम्पादिका : डॉ. रमा जैन

स्नातक पाठ्यक्रम

# DSC-2 : SANSKRIT PROSE

## अध्ययन सामग्री : अन्विति-V एवं अन्विति-VI

### विषय सूची

**इकाई-5 :** संस्कृत में गद्यकाव्य का उद्भव एवं विकास : सुबन्धु, बाणभट्ट, दण्डी, अम्बिकादत्त व्यास 1-20

**इकाई-6 :** संस्कृत में नीतिकथा एवं लोककथा साहित्य : पंचतन्त्र, हितोपदेश, वेतालपंचविंशतिका, सिंहासनद्वात्रिंशिका, पुरुषपरीक्षा 21-35

*सम्पादिका*
**डॉ. रमा जैन**

*लेखिका :*
**डॉ. कान्ता**
तदर्थ प्रवक्त्री,
संस्कृत विभाग,
मुक्त शिक्षा विद्यालय

**मुक्त शिक्षा विद्यालय**
दिल्ली विश्वविद्यालय
5, कैवेलरी लेन, दिल्ली-110007

# संस्कृत में गद्यकाव्य का उद्भव एवं विकास : सुबन्धु, बाणभट्ट, दण्डी, अम्बिकादत्त व्यास

कवियों की कसौटी गद्य काव्य **(गद्यं कवीनां निकर्ष वदन्ति)** उन वर्णनात्मक गद्य-साहित्यिक रचनाओं के लिए प्रयुक्त होता है जो काव्य-रचना के सम्पूर्ण लक्षणों से समन्वित, अतीव परिष्कृत एवं आलंकारिक शैली में लिखी हुई हैं। संस्कृत साहित्य शास्त्रकारों ने इन गद्य रचनाओं को कथा एवं आख्यायिका नामक दो भागों में विभाजित किया है और उनकी भिन्न-भिन्न विशेषताओं को गिनाया है। उदाहरणतः भामह के अनुसार आख्यायिका वह गद्य रचना है जिसमें विषय उदात्त हो और जो वक्त्र एवं अपरवक्त्र छन्दों में गुम्फित हो। यह अध्यायों में बँटा रहता है जो उच्छ्वास नाम से कहे जाते हैं। उसमें नायक अपने चरित्र (वृत्त) को स्वयं कहता है। कन्यापहरण, युद्ध, (प्रेमियों के) वियोग तथा अन्तिम संयोग इसमें मुख्य वर्णित घटनाएँ होती हैं। दूसरी ओर कथा उच्छ्वासों में विभक्त नहीं होती और न ही इसमें वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्द होते हैं। यह संस्कृत अथवा अपभ्रंश की रचना हो सकती है। इसमें अपना वृत्त नायक स्वयं नहीं कहता बल्कि अन्य व्यक्ति के द्वारा वर्णित रहता है क्योंकि कोई कुलीन व्यक्ति अपना गुण आप ही कैसे कहेगा?

**दण्डी** ने इस वर्गीकरण का उपहास किया है। उनके अनुसार यह भेद निराधार है। दण्डी के अनुसार यदि नायक अपनी वास्तविक घटनाओं का वर्णन स्वयं करता है तो इसमें कोई भी (आत्मश्लाघादि) दोष नहीं है। पुनश्च, वर्णन का बन्धन इस भेद का मूल्य नहीं हो सकता क्योंकि आख्यायिका में भी वर्णन करने वाले अन्य व्यक्ति पाये जाते हैं। और यदि घटनाओं का वर्णन नायक स्वयं करता है अथवा कोई और व्यक्ति करता है, तो इसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। दण्डी के अनुसार यदि अध्यायों को उच्छ्वास अथवा लम्बकों में, छन्दों को वक्त्र अपरवक्त्र अथवा आर्यों में भी लिखा जाए, इससे भी कोई अन्तर नहीं पड़ता। संक्षेप में, दण्डी के अनुसार कथा एवं आख्यायिका गद्य रचना के एक ही प्रकार के होने पर भी पृथक् नाम वाली है **''तत्कथा अख्यायिकेत्येका जातिः संज्ञाद्वयांकिता''**–काव्यादर्शः (1 : 28)।

**विश्वनाथ** द्वारा साहित्यदर्पण (VI. 332 36) में इनकी विशेषताओं को देने का प्रयत्न अधिक सफल नहीं हुआ। विश्वनाथ के अनुसार प्रारम्भ में देवतास्तुति तथा दुर्जन के चरित्रों का वर्णन कथा का आवश्यक भाग है। रसान्वित विषय की अभिव्यक्ति पद्य में की जाती है और यह कहीं आर्या और कहीं वक्त्र अथवा अपरवक्त्र छन्दों से अंतर्गुम्फित होती है। आख्यायिका भी कथा के समान होती है। इसमें कवि के वंश का वर्णन होता है और कहीं कहीं प्राचीन कवियों का इतिवृत्त पद्य में होता है। कथा के विभाग आश्वास कहलाते हैं। आश्वास के प्रारम्भ में आने वाली घटनाओं को आर्या और वक्त्र छन्दों में प्राधान्य रूप से लक्षित किया जाता है।

कथा और आख्यायिका के रुद्रट द्वारा प्रतिपादित लक्षण कादम्बरी एवं हर्षचरित को आदर्श मानकर चलते हैं। रुद्रट के अनुसार देवता एवं गुरुओं को पद्यों द्वारा नमस्कार करके लेखक को अपने वंश एवं

कर्त्तव्य को संक्षेप में लिखकर 'कथा' को आरम्भ करना चाहिए। तब अनुप्रासयुक्त गद्य का आश्रय लेकर नगरवर्णन से कथा का प्रारम्भ करना चाहिए। मुख्य कथानक में उपकथा का अन्तर्भाव करना चाहिए। इनके कथानक का उद्देश्य कन्या प्राप्ति होता है तथा इनमें शृंगार रस का प्रयोग करना चाहिए। ये सब विशेषताएँ कादम्बरी में मिलती हैं।

आख्यायिका का लक्षण रुद्रट इस प्रकार देते हैं–अपने इष्टदेव एवं गुरुओं को नमस्कार करके प्राचीन कवियों की प्रशंसा करनी चाहिए। तदुपरान्त राजा के प्रति भक्ति अथवा दूसरों के गुणवर्णन में रुचि ही उसे अपना उद्देश्य बनाना चाहिए। कथा की भांति यह भी गद्य में रचित होना चाहिए। उसे अपने वंश का वर्णन करना चाहिए परन्तु पद्य में नहीं। इसका विभाजन आश्वासों में होना चाहिए और प्रत्येक आश्वास के प्रारम्भ में दो श्लेषमय आर्या छन्द की रचना करनी चाहिए। स्पष्टतः यह परिभाषा बाण रचित हर्ष चरित पर आधारित है।

भामह, रुद्रट एवं विश्वनाथ के द्वारा प्रतिपादित लक्षणों के विवेचन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि गद्य काव्य के वर्गीकरण का निषेध करते हुए दण्डी ठीक ही थे। यदि कोई भेद करना ही हो, तो अमरकोष में दी गई परिभाषा अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है। अमरसिंह के अनुसार आख्यायिका का प्रतिपाद्य विषय ज्ञात तथ्यों पर आधारित रहता है (आख्यायिकोपलब्धार्था) परन्तु कथा कवि की कल्पना पर आश्रित रहती है। ('प्रबन्ध कल्पना कथा') इनका इससे भी सुन्दर नाम 'गद्य काव्य' हो सकता है। इन रचनाओं में काव्य के सभी लक्षण उदाहरणतः अलंकारों का प्रयोग नगर, पर्वत, वन, नदियाँ, सरोवर, सूर्यास्त, सूर्योदय, ज्योत्स्नायुक्त रात्रि इत्यादि के विविध प्रकार के वर्णन मिलते हैं। इनका प्रतिपाद्य विषय ऐतिहासिक, जीवनी अथवा केवल कल्पित कहानी ही हो सकता है। दोनों प्रकार के गद्यों में ही कवि वर्ण्यविषय पर अधिक ध्यान नहीं देते। उनकी सम्पूर्ण शक्ति साहित्यिक प्रतिभा के प्रदर्शन में ही केन्द्रित होती है। यह प्रवृत्ति सब उपलब्ध काव्यों में अधिक या कम मात्र में पायी जाती है। कादम्बरी एवं वासवदत्ता में कथानक का महत्त्व कम है। यही बात हर्ष चरित्र में भी लागू होती है। दशकुमारचरित में निःसन्देह कथानक अलंकारों के पूर्णतः अधीन नहीं है।

## 2. गद्य रचना एवं गद्य काव्य में भेद

संस्कृत-साहित्य में प्राचीनकाल से ही गद्य-रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। यजुर्वेद के गद्यसूक्तों एवं अथर्ववेद के कुछ गद्य भागों के अतिरिक्त ब्राह्मण एवं उपनिषद बहुत प्राचीन गद्य रचनाओं के उदाहरण हैं। इन ग्रन्थों में कहीं-कहीं आख्यान भी हैं उदाहरणतः ऐतरेय एवं शतपथ ब्राह्मण के आख्यान। उपनिषदों में भी सत्यकाम जाबाल इत्यादि की कथाएँ मिलती हैं। कौटिल्य अर्थशास्त्र तथा पतञ्जलि का महाभाष्य भी गद्य में लिखे हुए है। परन्तु उनकी शैली का उद्देश्य है तथ्यों का उद्घाटन करना। गहन-विषयों का शास्त्रीय विश्लेषण एवं विवेचन ही उनका मुख्य उद्देश्य है। अभिव्यक्ति के परिष्कार, अलंकरण अथवा विस्तार का कोई प्रयत्न नहीं किया गया न ही मनोरंजन उनका उद्देश्य है। परन्तु गद्य काव्यों की बात बिल्कुल इनके विपरीत है।

काव्यशास्त्रीय उपकरणों से अलंकृत अतिरम्य अभिव्यंजनाओं से विद्वज्जनों का मनोरंजन ही इनका मुख्य उद्देश्य है। लेखक के लिए भाषा एवं शैली प्रमुख हैं।

### 3. गद्य का उद्‌भव तथा विकास

संस्कृत साहित्य में गद्य काव्यों की प्राचीनता में कोई संदेह नहीं। पाणिनि की अष्टाध्यायी के प्रसिद्ध वार्तिककार कात्यायन ने आख्यायिका का साहित्यिक रचना के रूप में दो बार उल्लेख किया है। पाणिनि के सूत्र ''अधिकृत्य कृते ग्रन्थे'' (अष्टाध्यायी- टण् 3-37) पर टिप्पणी करते हुए भी कात्यायन ने आख्यायिका का उल्लेख किया है (लुबाख्यायिकाभ्यो बहुलम्)। अष्टाध्यायी के IV, 2.60 सूत्र पर कात्यायन ने आख्यायिका का उल्लेख किया है (आख्यायिकेतिहासपुराणैभ्यश्च)। इस विषय में ईसा से तीसरी शताब्दी के पूर्वार्ध में महाभाष्य के प्रणेता पतंजलि का भी साक्ष्य उपलब्ध होता है। कात्यायन के उपर्युक्त वातिक पर टिप्पणी करते हुए पतंजलि ने वासवदत्ता, सुमनोत्तरा और भैभरथी इन तीनों आख्यायिकाओं के नामों का उल्लेख किया है, ये तीनों ही आख्यायिकाएँ आजकल उपलब्ध नहीं है। यहाँ उल्लिखित वासवदत्ता न तो सुबन्धु की 'वासवदत्ता' है और न ही बाण के द्वारा उल्लिखित 'वासवदत्ता'। पतंजलि के द्वारा इन ग्रन्थों का उल्लेख ईसा से पूर्व दूसरी शताब्दी में 'गद्य काव्यों' की सत्ता को सिद्ध करता है।

धनपाल ने तिलकमंजरी के भूमिकागत पद्यों में श्रीपालित की तरंगवती नाम की कथा का उल्लेख किया है (पुण्या पुनाति गंगेव गां तङ्गवती कथा)। हाल (राजा) की सभा का सदस्य होने के कारण श्रीपालित का काल ईसा की दूसरी शताब्दी माना जा सकता है। इसी प्रकार रामिल एवं सोमिल के द्वारा रचित शूद्रक के चरित्र पर आधारित 'शूद्रक कथा' का तथा भट्टारक हरिश्चन्द्र के द्वारा रचित कथाओं का उल्लेख उपलब्ध होता है। परन्तु ये सब रचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं। इनमें से सबसे प्राचीन दण्डी, सुबन्धु एवं बाण की कृतियाँ उपलब्ध हैं जो भारतीय गद्यकाव्य के पूर्ण विकास को प्रदर्शित करती हैं। प्राचीन ग्रंथों के अभाव में संस्कृत गद्य काव्य के विकास का वर्णन एक कठिन कार्य है: परन्तु ''संस्कृत गद्य काव्य ग्रीक गद्य काव्य से लिया गया'' इस मत का समर्थन करने वाले विद्वान् पीटरसन, रोहड़े, बेबर तथा राइख के मत को स्वीकार करना भी असम्भव है। भारतीय एवं ग्रीक गद्य काव्यों में प्रथम-दर्शन पर प्रेम का होना, प्रेमियों का एक-दूसरे को स्वप्न में देखना, नायक एवं नायिका का अद्‌भुत सौन्दर्य, प्रेम एवं प्रकृति का विस्तृत वर्णन इत्यादि की समानताएँ ही इस मत का आधार हैं। परन्तु ये आधार प्रामाणिक सिद्ध नहीं होते। जैसा कि लुई ग्रे (वासवदत्ता की भूमिका) ने कहा है कि ''ये साम्य किसी बात को सिद्ध करते हुए प्रतीत नहीं होते। दोनों देशों के गद्य काव्य कथानक, योजना एवं भाव की दृष्टि से पूर्णत: भिन्न हैं। संस्कृत गद्य काव्य में कथासूत्र अथवा पात्रों के साहसपूर्ण कर्मों का भाग कम से कम मिलता है और काव्य शास्त्रीय अलंकरणों, प्रकृति के सूक्ष्म वर्णनों और शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक गुणों से युक्त विस्तृत चरित्र-चित्रण पर अधिक बल दिया गया है। परन्तु दूसरी ओर ग्रीक गद्य काव्य में कथानक पर सर्वोपरि बल दिया जाता है। पाठक का ध्यान एक साहसिक कार्य की ओर जाता है और असम्भावित घटनाओं की ओर आकृष्ट होता है। उसमें सुन्दर रचना की ओर अधिक ध्यान दिया गया है। प्रकृति का वर्णन एवं चारुत्व नाममात्र को ही किया गया है। संक्षेप में संस्कृत

एवं ग्रीक पाठकों के समान उनके काव्यों में वर्णित भाव भी भिन्न-भिन्न पाये जाते हैं और इन दोनों में किसी प्रकार की निकटता को भी स्थापित नहीं किया जा सकता। घनिष्ठ सम्बन्ध का तो कहना ही क्या।''

इस प्रकार संस्कृत गद्य काव्य का सम्पूर्ण विकास स्वतंत्र रूप से भारतवर्ष में हुआ। आख्यायिका का विकास प्रशस्तियों में काव्य शैली का समन्वय करने से हुआ जैसा कि रुद्रदामा के गिरिनार शिखालेख तथा समुद्रगुप्त के इलाहाबाद स्तम्भलेख में देखा जा सकता है। इनमें अलंकृत वर्णनात्मक गद्य काव्य में संक्षिप्त ऐतिहासिक तथ्यों को प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार गाथाओं की सामग्री पर आश्रित 'कथा' को, लौकिक एवं अलौकिक घटनाओं एवं उद्देश्यों के साथ मुख्य कथानक में रखने की चेष्टा की गई है। क्योंकि ये गद्य काव्य सुसंस्कृत पाठकों के लिए लिखे गए हैं अतः इनमें सब प्रकार के वर्णन अतीव अलंकृत भाषा में उपलब्ध होते हैं।

**4. प्रमुख गद्य काव्य**

दण्डी, सुबन्धु, बाण, ये तीन गद्यकाव्य-लेखक सर्वोत्कृष्ट हैं। यद्यपि दण्डी एवं सुबन्धु के काल को निर्धारित करने में कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलते तथापि विचार करने पर यह विदित होता है कि सुबन्धु बाण से पूर्ववर्ती हैं।

## महाकवि सुबन्धु

**सरस्वतीदत्तवरप्रसादश्चक्रे सुबन्धु सुजनैकबन्धुः।**
**प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्धविन्यासवैदग्ध्यनिधिर्निबन्धम्।**

(वासवदत्ता भूमिका श्लोक 13)

यद्यपि सुबन्धु का यश गद्यकवियों में सुस्थिर हो चुका था तथापि उनके जीवन का प्रामाणिक वृत्तान्त हमें बहुत कम ज्ञात है। विभिन्न प्रकार के संशय होने पर भी यह माना जा सकता है कि बाण ने निम्नलिखित पद्य में सुबन्धु के ग्रंथ का ही उल्लेख किया है।

**कवीनाममगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया।**
**शक्त्येव पांडुपुत्रणां गतया कर्णगोचरम्।**

(बाणः हर्षचरित श्लोक 11)

'निश्चय ही कवियों का अभिमान सुबन्धु की रचना 'वासवदत्ता' के कानों तक पहुँचते ही इस प्रकार चूर्ण हो गया जिस प्रकार इन्द्र द्वारा प्राप्त शक्ति (नामक अस्त्र विशेष) को कर्ण के पास देखते ही पांडुपुत्रों का गर्व जाता रहा।'

प्राकृतकाव्य 'गौडवहो' के लेखक वाक्पतिराज भी सुबन्धु को यशस्वी कवि भास, कालिदास तथा हरिश्चन्द्र की कोटि में रखते हैं।

'राघवपाण्डवीय' के कर्ता कविराज जिनका काल 1200 ईस्वी है, अपने आपको वक्रोक्ति मार्ग में निपुण बाण एवं सुबन्धु के समान समझते हैं।

**सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः।**
**वक्रोक्तिमार्ग निपुणश्चतुर्थो विद्यते न वा।।**

श्रीकण्ठचरित के कर्त्ता काश्मीरी कवि मंख जिनका काल ईसा की बारहवीं शताब्दी है, सुबन्धु के विषय में निम्नलिखित मर्मस्पर्शी उल्लेख करते हैं–''वासं याते सुबन्धौ विधः'' (जब सुबन्धु विधि के क्रूर हाथों में चले गये)। इससे स्पष्ट है कि संस्कृत लेखकों की गणना में सुबन्धु ने एक निश्चित स्थान प्राप्त कर रखा था। परन्तु उनके जीवनवृत्तान्त के विषय में हमें उन्हीं के ही ग्रंथ पर आश्रित होना पड़ता है। सुबन्धु ने निम्नलिखित पद्य में विक्रम के राज्य का सोत्कण्ठ उल्लेख किया है–

**सा रसवत्ता विहता नवका विलसन्ति चरति नो कङ्कः।**
**सरसीव कीर्तिशेषं गतवति भुवि विक्रमादित्ये।।**

अर्थात् जिस प्रकार तालाब के पंक मात्र (अथवा स्थमात्र) शेष रह जाने पर सारस पक्षी अन्तर्हित हो जाते हैं (सारसवत्ता सरसी से युक्त होना), बगुले भी दिखाई नहीं पड़ते और न कंक पक्षी ही विचरता है, इसी प्रकार पृथ्वी पर विक्रमादित्य के कीर्तिमान शेष रहने पर वह रसिकता नष्ट हो गई, नए–नए कवि चमकने लगे और कौन किस पर प्रहार नहीं करता।'

यहाँ निश्चित ही सुबन्धु ने अपने विद्वान् संरक्षक का उल्लेख किया है जिसकी मृत्यु के पश्चात् राज्य अस्त–व्यस्त हो गया–यह विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त द्वितीय नहीं हो सकता। बहुत अधिक सम्भावना है कि यह विक्रमादित्य वह चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य था जिसने ईसा की 476–495 तक राज्य किया और हूणों के आक्रमण के कारण जिसके पश्चात् राज्य में अशान्ति हो गई। ऐसा प्रतीत होता है कि सुबन्धु अपने भूतपूर्व स्वामी में बहुत अनुरक्त था और इन घटनाओं पर मानसिक रूप से अशान्त था। राजाश्रय के नष्ट होने पर, कवि के लिए केवल सत्संगति ही आश्रय थी। इसीलिए वह अपने आपको सुजनैकबन्धु (सज्जनों का ही बन्धु) कहता है। अतः यह प्रतीत होता है कि सुबन्धु कुछ समय के लिए गुप्त साम्राज्य का सभासद् था परन्तु राज्य के पतन के पश्चात् संरक्षणहीन हो गया।

हाल में ही प्रकाशित गद्य–काव्य अवन्तिसुन्दरी के भूमिकागत पद्यों में बिन्दुसार के बन्धन से प्रपलायित सुबन्धु का उल्लेख एक असम्पूर्ण श्लोक में किया गया है। चन्द्रगुप्त मौर्य के पुत्र एवं उत्तराधिकारी बिन्दुसार के साथ इसका सम्बन्ध जोड़ना निष्फल है। अवन्तिसुन्दरी में उल्लिखित बिन्दुसार बुद्धगुप्त के राज्य की उत्तराधिकारी किसी शक्ति का कोई अधिकारी ही होगा।

सुबन्धु के काल के विषय में उसके नाम का प्राचीनतम उल्लेख वाक्पतिराज का है जिसका काल 734 ई. है। उसके ग्रंथ का प्राचीनतम उल्लेख कन्नौज के राजा हर्षवर्धन (606-647 ई.) के समकालीन कवि बाण का है। इस प्रकार अवश्य ही सुबन्धु बाण का पूर्ववर्त्ती है।

वासवदत्ता में उल्लिखित 'बौद्धसंगीतिमिवालंकारभूषितम्' (अर्थात् बौद्धों की संगीति के समान अलंकार से अलंकृत) को सुबन्धु के काल का अनुमान लगाने में आधार बनाया गया है। ऐसा कहा जाता है कि यहाँ धर्मकीर्ति द्वारा लिखित 'वौद्धसंगत्यलंकार' का उल्लेख है जो चीनी यात्री ईतित्संग (671-695 ई.) का पूर्ववर्ती है। परन्तु प्रोफेसर सिल्वन लेवी ने सिद्ध किया है कि उपर्युक्त उल्लेख से धर्मकीर्ति का कोई सम्बन्ध नहीं है और इस आधार पर सुबन्धु को ईसा की सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में नहीं रख सकते।

सुबन्धु के काल पर एक और साहित्यिक साक्ष्य इस प्रकार है–

''न्यायस्थितिमिवोद्योतकरस्वरूपाम्'' (अर्थात् उद्योतकर के द्वारा प्रतिपादित न्यायस्थिति के समान)।

यहाँ सम्बन्ध के द्वारा उल्लिखित उद्योतकर न्यायवार्तिक के रचियता माने जाते हैं, उन्होंने बौद्ध तांत्रिक दिङ्नाग (525-600) का खण्डन किया है। यदि दिङ्नाग और उद्योतकर को समकालीन भी मान लिया जाय तो भी वासवदत्ता की रचना 520 ई. से पूर्व सिद्ध नहीं हो सकती अतः सुबन्धु को छठी शताब्दी के उत्तरार्ध में ही रखना होगा। ऐसा भी माना जाता है कि सुबन्धु बाण का समकालीन था। परन्तु यह मत तर्कसंगत नहीं है क्योंकि बाण ने वासवदत्ता को उत्कृष्ट साहित्यिक रचना माना है जिससे कवियों का दर्प टूट गया था। पुनश्च, दिङ्नाग तथा उद्योतकर का काल भी पूर्णतः निश्चित नहीं है इसलिए सम्भवतः सुबन्धु बुद्धगुप्त विक्रमादित्य (छठी शताब्दी का पूर्वार्द्ध) के काल के कुछ समय ही बाद रहे होंगे।

**वासवदत्ता**

इस काव्य का कथानक बहुत ही साधारण है। राजा चिन्तामणि के पुत्र युवराज कन्दर्पकेतु ने स्वप्न में एक अति सुन्दर युवती को देखा और उसके सौन्दर्य से इतना आकृष्ट हुआ कि राजकुमारी (वासवदत्ता) को ढूँढ़ने के लिए अपनी राजधानी से चल पड़ा। अपने मित्र मकरन्द के साथ वह विन्ध्य प्रदेश में पहुँचा। रात्रि में उसने एक शुक सम्पत्ति के वार्तालाप को सुना और उसे ज्ञात हुआ कि उसके स्वप्न की राजकुमारी पाटलिपुत्र के राजा श्रृंगार-शेखर की पुत्री वासवदत्ता है और वह भी उससे (कन्दर्पकेतु से) प्रेम करती है और उसी को ढूँढ़ने के लिए उसने तमालिका नाम की मैना को भेजा है। पक्षी से निर्दिष्ट दोनों प्रेमी-प्रेमिका पाटलिपुत्र में मिले। क्योंकि वासवदत्ता के पिता ने उसका विवाह किसी विद्याधर से निश्चित कर रखा था, इसलिए दोनों ने अज्ञात पलायन का निश्चय किया। एक मायावी घोड़े से विन्ध्यपर्वत में पहुँचे। कंदर्पकेतु अभी सो ही रहा था कि वासवदत्ता भ्रमण के लिए बन में गई जहाँ किरातों के दो गणों ने उसका पीछा किया। किरातों के दोनों गण वासवदत्ता को प्राप्त करने के लिए आपस में झगड़ पड़े। वासवदत्ता भाग निकली और उसे एक आश्रम के बीच से निकलना पड़ा जहाँ संन्यासी ने उसे शाप दिया और वह पत्थर में परिवर्तित हो

गई। निराश हुए कंदर्पकेतु ने आत्महत्या करनी चाही परन्तु एक आकाश-ध्वनि ने इसका निवर्तन किया। अन्त में वह आश्रम में पहुँचा और उसके स्पर्श से राजकुमारी पुनः जीवित हो उठे।

यद्यपि कथानक बहुत ही छोटा है तथापि लेखक की यह स्वकल्पित कृति है। इसका साम्य नहीं है। वार्तालाप करते हुए पक्षी, जादू के घोड़े, संन्यासियों का शाप एवं आकाश-ध्वनियाँ इत्यादि कई विषयों को लेखक ने प्रस्तावित किया है जो कि साधारणतः भारतीय लोक साहित्य में पाया जाता है। लेखक का उद्देश्य अपनी अलंकार प्रतिभा का प्रदर्शन करना था न कि उपन्यास लिखने की शक्ति का। जैसा कि डॉ. सुशील कुमार डे का कहना है–''कथा की रोचकता घटनाओं में न होकर प्रेमियों के वैयक्तिक सौन्दर्य के चित्रण, उसकी उदारहृदयता पारस्परिक निरतिशय अनुराग, इच्छापूर्ति का बाधक दुर्भाग्य, खण्डित-प्रेम की वेदना एवं सब परीक्षाओं और कठिनाइयों में भी मिलन तक प्रेम की सुरक्षा में ही होती है।''

वासवदत्ता संस्कृत काव्यशास्त्रियों से अभिहित गौड़ी शैली में लिखी गई है। गौड़ी का लक्षण विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में ''श्लिप्ट शब्दयोजना, कठोरध्वनि वाले शब्दों का प्रयोग एवं समास बहुलता'' दिया है। सुबन्धु ने अपनी रचना को कई साहित्यक अलंकारों से विभूषित किया है जिनमें से श्लेष प्रधान है। सुबन्धु का स्वयं कहना है कि उसका काव्य–

**''प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्धविन्यासवैदग्ध्यनिधिः।''**

''प्रत्येक अक्षर में श्लेष होने के कारण वैदग्ध्य प्रतिभा की निधि है।''

वस्तुतः श्लेष को प्रस्तुत करने का उद्देश्य वक्रोक्ति की शोभा बढ़ाना है। उदाहरणतः एक युवती के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए सुबन्धु कहते हैं–

**वानरसेनामिव सुग्रीवांगदोपशोभिताम्**

अर्थात् वानरों की सेना के समान सुग्रीव (युवतीपक्ष में सुन्दरग्रीव) और अंगद (युवतीपक्ष में अंगद नामक आभूषण विशेष) से सुशोभित थी।

श्लेष के पश्चात् विरोधाभास (विरोध के समान प्रतीति) अलंकार का प्रयोग आधिक्य से पाया जाता है। विरोधाभास में श्लेष की सहायता से वास्तविक अर्थ की प्रतीति होती है।

उदाहरतः-'अग्रहेणापि काव्यजीवज्ञेन'।

अर्थात् यद्यपि वह 'ग्रह' नहीं था तो भी काव्य शुक्र (जीव) बुध का ज्ञाता था। इस विरोधाभास का परिहार इस अर्थ से होता हैः यद्यपि वह चोरी इत्यादि से मुक्त था तो भी काव्य के सार को जानने में निष्णात था। परिसंख्या, मालादीपक, उत्प्रेक्षा, प्रौढ़ोक्ति, अतिशयोक्ति तथा काव्य-लिंग आदि दूसरे अलंकारों का भी सुबन्धु ने प्रयोग किया है। शब्दालंकारों में से अनुप्रास एवं यमक का प्रयोग किया गया है। अनुप्रास का उदाहरण दृष्टव्य है–

**''मदकलकलहंससरसरसितोदभ्रान्तम्'' अथवा**

**''उपकूलसञ्जातनलिनिकुञ्जपुंजितकुलायकुक्कुट घटद्यूत्कारभैरवातिशयम्''**

लगभग समान रूप से ही प्रयुक्त यमक का उदाहरण इस प्रकार है–

**आनन्दोलितकुसुमकेसरे केसररेणुमुषि रणितमधुरमणीनां रमणीनां सिकचकुमुदाकारे मुदाकारे।**

पाश्चात्य आलोचक डाक्टर ग्रे ने वासवदत्ता के बारे में कहा है–

''विलोल-दीर्घ समासों में वस्तुतः रमणीयता है एवं अनुप्रासों में अपना स्वतः का ललित संगीत। श्लेषों में सुश्लिष्ट संक्षिप्तता है। यद्यपि श्लेषों के द्वारा दो या दो से अधिक दुरूह अर्थों को प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया गया है तथापि वे दोनों पक्षों में घटने वाले वास्तविक रत्न हैं। सुबन्धु द्वारा किये गये वर्णन अधिक प्रशंसनीय है परन्तु उनके आधिक्य से प्रयुक्त होने के कारण कभी-कभी उद्वेजक से प्रतीत होते हैं। सम्पूर्ण आख्यान का अधिकतम भाग ये वर्णन ही हैं और कथानक इनके नीचे लुप्त प्रायः हो जाते हैं। पर्वत, वन, नदियों अथवा नायिका आदि का भी वर्णन क्यों न हो उनके सर्वतोमुखी बाहुल्य के होने पर भी, सौन्दर्य एवं संगति का नितान्त अभाव है।''

## महाकवि बाणभट्ट

**''बाण कवीनामिव चक्रवर्ती चक्रास्ति यस्योज्ज्सलवणशोभाम्**
**एकातपत्रं भुवि पुष्पभूतिवंशाश्रयं हर्षचरितमेव।''**

बाण ने गद्य के इतिहास में वही स्थान प्राप्त किया है जो कि कालिदास ने संस्कृत काव्य क्षेत्र में। पाश्चाद्वर्ती लेखकों ने एक स्वर में बाण पर प्रशस्तियों की अभिवृष्टि की है।

**''जाता शिखंडिनी प्राग्यथा शिखंडी तथावगच्छामि।**
**प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणी बभूवेति।''**

ऐसा आर्या सप्ताती के लेखक गोवर्धनाचार्य का कथन है। तिलकमंजरी के लेखक धनपाल की प्रशस्ति इस प्रकार है–

**केवलोऽपि स्फुरन् बाणः करोति विमदान् कवीन्।**
**किं पुनः क्लृप्तसन्धानपुलिन्दकृतसन्निधिः।।**

त्रिलोचन ने निम्नलिखित पद्य में बाण की प्रशंसा की है–

**हृदि लग्नेन बाणेन यन्मन्दोऽपि पदक्रमः।**
**भवेत् कविवरंगाणां चापलं तत्रकारणम्।**

राघवपांडवीय के लेखक कविराज के अनुसार–

**सुबन्धुर्वाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः।**
**वक्रोक्तिमार्ग निपुणश्चतुर्थो विद्यते न वा।।**

पश्चाद्वर्ती लेखकों की अनन्त प्रशस्तियों में ये कुछ ही हैं।

बाण संस्कृत के कुछ गिने-चुने लेखकों में से एक हैं जिनके जीवन एवं काल के विषय में निश्चित रूप से ज्ञात है। कादम्बरी की भूमिका में तथा हर्षचरित के प्रथम दो उच्छ्वासों में बाण ने अपने वंश के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक सूचना दी है।

सोन नदी (प्राचीन हिरण्यबाहु) के तट पर स्थित प्रीतिकूट नाम के ग्राम में वात्स्यायनगोत्रीय विद्वद्ब्राह्मण कुल में बाण ने जन्म लिया। बाण अपने वंश का उद्भव सरस्वती तथा दधीचि के पुत्र सारस्वत के भाई वत्स से बतलाते हैं। वत्स का वंशज कुबेर था जिसका चतुर्थ पुत्र पाशुपत बाण का प्रपितामह था। बाण के पितामह का नाम अर्थपति था जिनको ग्यारह पुत्र हुए। बाण के पिता का नाम चित्रभानु था। बाण के शैशवकाल में ही उनकी माता राज्यदेवी की मृत्यु हो गई उनका पालन-पोषण उनके पिता के द्वारा ही हुआ। बाण अभी चौदह वर्ष के ही थे कि उनके पिता उनके लिए काफी सम्पत्ति छोड़कर चल बसे। यौवन का प्रारम्भ एवं सम्पत्ति होने के कारण, बाण संसार को स्वयं देखने के लिए घर से चल पड़े तथा उन्होंने विभिन्न प्रकार के लोगों से सम्बन्ध स्थापित किया। अपने समवयस्क मित्रों तथा साथियों में बाण ने प्राकृत के कवि ईशान, दो भाट, एक चिकित्सक का पुत्र, एक पाठक, एक सुवर्णकार, एक रत्नाकर, एक लेखक, एक पुस्तकावरक, एक मार्दगिक, दो गायक, एक प्रतिहारी, दो वंशीवादक, एक गान के अध्यापक, एक नर्तक, एक आक्षिक, एक नट, एक नर्तकी, एक तांत्रिक, एक धातुविद्या में निष्णात और एक ऐन्द्रजालिक आदि की गणना की है। कई देशों का भ्रमण करके वह अपने स्थान प्रीतिकूट लौटा। वहाँ रहते हुए उन्हें हर्षवर्धन के चचेरे भाई कृष्ण का एक सन्देश मिला कि कुछ चुगलखोरों ने राजा से बाण की निन्दा की है इसलिए वे तुरन्त ही राजा से मिलने गए और दो दिन की यात्रा के पश्चात् अजिरावती के तट पर राजा को मिले। प्रथम साक्षात्कार में बाण को बहुत निराशा हुई क्योंकि सम्राट के साथी मालवाधीश ने कहा 'अयमसौभुजंगः' (यह वही सर्प (दुष्ट) है) अस्तु, बाण ने अपनी स्थिति का स्पष्टीकरण किया और सम्राट् उससे प्रसन्न हुए सम्राट के साथ कुछ मास रहकर बाण वापिस लौटा और उन्होंने प्रस्तुत हर्षचरित के रूप में हर्ष की जीवनी लिखनी प्रारम्भ की।

बाण की आत्मकथा यहाँ समाप्त हो जाती है और बाण के अन्तिम समय के विषय में हमें कुछ भी ज्ञात नहीं है। परन्तु ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि बाण को राजसंरक्षण मिला और उन्होंने भी हर्ष चरित लिखकर उसका मूल्य चुका दिया। बाण का भूषणभट्ट अथवा भट्ट पुलिन्द नाम का एक पुत्र था जिसने बाण की मृत्यु के पश्चात कादम्बरी को सम्पूर्ण किया।

## बाण का काल

बाण के काल निर्णय में कोई कठिनाई नहीं है। हर्षचरित के प्रारम्भ में वे हर्ष को राज्य करता हुआ राजा बतलाते हैं–

**जयति ज्वलत्प्रतापज्वलनप्राकारकृतजगद्रश।**
**सकलप्रणयिमनोरथसिद्धि श्रीपर्वती हर्षः।।**

हर्ष के वंश का वर्णन उदाहरणतः प्रभाकरवर्धन एवं राज्यवर्धन के नाम यह निःसन्देह सिद्ध करते हैं कि बाण कन्नौज के सम्राट हर्षवर्धन (606-646) के राजकवि थे।

बाण का यह काल बाह्य साक्ष्यों से भी साम्य रखता है। बाण का उल्लेख 9वीं शताब्दी में अलंकार शास्त्र के ज्ञाता आनन्दवर्धन ने किया। सम्भवतः बाण आनन्दवर्धन से बहुत पहले हो चुके थे। वामन (750 ईस्वी) ने भी बाण का उल्लेख किया। गौड़वाहो के लेखक वाक्पति राज (734 ईस्वी) भी बाण की प्रशंसा करते हैं।

## महाकवि बाण भट्ट की कृतियाँ

कादम्बरी और हर्षचरित के अतिरिक्त कई दूसरी रचनाएँ भी बाण की मानी जाती हैं। उनमें से मार्कण्डेय पुराण के देवी महात्म्य पर आधारित दुर्गा का स्त्रेत चंडीशतक है। प्रायः एक नाटक 'पार्वती परिणय' भी बाण द्वारा रचित माना जाता है। परन्तु वस्तुतः इसका लेखक कोई पश्चाद्वर्ती वामन भट्टबाण है।

## हर्ष-चरित

ऐतिहासिक कथानक से सम्बन्धित हर्षचरित संस्कृत का सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। इस समय उपलब्ध हर्षचरित आठ उच्छ्वासों में विभाजित है। जिसमें से पहले ढाई उच्छ्वास बाण की आत्मकथा रूप में हैं। तदुपरान्त स्थाणीश्वर (आधुनिक थानेश्वर) के पुण्यभूति वंश, जिनमें हर्ष के पिता प्रभाकरवर्धन का जन्म हुआ था, का वर्णन है। बाण ने प्रभाकरवर्धन की पुत्री राज्यश्री और कन्नौजाधिपति ग्रहवर्मा मौखरि के विवाह का वर्णन किया है। अपने ज्येष्ठ पुत्र राजवर्धन को हूणों का हनन करने के लिए भेजकर प्रभाकरवर्धन ज्वरग्रस्त हो गए। बाण ने उसके रोग, मृत्यु, दाह-संस्कार एवं साम्रज्ञी यशोमती के आत्मदाह का वर्णन किया है। तभी गौड़ एवं मालव सेनाओं के कन्नौज पर आक्रमण तथा ग्रहवर्मा की हत्या की सूचना मिलती है यह सुनकर राज्यवर्धन कन्नौज की ओर बढ़े। शत्रुओं ने हथियार डाल दिए। परन्तु चालाकी खेली। राज्यवर्धन को शत्रु शिविर में आमंत्रित किया गया और उनकी निर्मम हत्या कर दी गई। हर्ष ने अपने बहनोई एवं भाई की हत्या का बदला लेने की प्रतिज्ञा की तथा कन्नौज की ओर प्रस्थान किया। हर्ष की बढ़ती हुई सेना के सामने शत्रु भाग निकला। यह सुनकर हर्ष के विस्मय का अन्त न था कि राज्यश्री कैद से छूटकर विंध्याचल की ओर चली गई। बहुत परिश्रमयुक्त खोज के पश्चात् हर्ष ने आत्मदाह करने को तत्पर राज्यश्री को दिवाकर मित्र

ऋषि के आश्रम के पास पाया और गंगा के तट पर अपने शिविर में ले आया। यहाँ ग्रंथ अकस्मात् समाप्त हो जाता है।

ऐसा कहा जाता है कि बाण का विचार हर्ष के चरित्र को पूर्णरूपेण लिखने का नहीं था। वह इसका केवल मात्र एक अंश लिखना चाहते थे क्योंकि उन्होंने अपने श्रोताओं को बतलाया है 'हर्ष के जीवन का वर्णन' सैकड़ों जीवनों में भी नहीं किया जा सकता। यदि आप उसका एक अंश सुनना चाहते हो तो मैं तैयार हूँ। यह भी ठीक ही कहा जाता है कि 'हर्षचरित' हर्ष के जीवन की केवल एक घटना मात्र है क्योंकि हर्ष चरित से उपलब्ध ऐतिहासिक ज्ञान बहुत ही कम है। परन्तु इस ग्रंथ की समालोचना करते हुए हमें इसे ऐतिहासिक रचना के रूप में नहीं देखना चाहिए। वस्तुतः उसे ऐतिहासिक कथानक से युक्त एक काव्य कहना ही अधिक युक्तिसंगत है। लेखक की पूर्ण शक्ति काव्य-प्रतिभा का प्रदर्शन करने पर ही केन्द्रित है और ऐतिहासिकता उनके लिए गौण है। उन्होंने कृति के प्रतिनायक भूत गौड़ एवं मालव राजाओं का नाम भी नहीं दिया है। भूमि को गौड़ों से शून्य करने के हर्ष के निश्चय होने पर भी, बाण ने गौड़ों की भावी घटनाओं को छोड़ दिया है। जहाँ पाठक विंध्यपर्वत में से हर्ष की गवेषणा के परिणाम को सुनने को उत्कण्ठित हैं वहाँ बाण विंध्धपर्वत का सूक्ष्म वर्णन करने में संलग्न हैं।

अस्तु, बाण ने हर्ष की प्रस्थान करती हुई सेना का, राज्यसभा का, धार्मिक सम्प्रदायों का, ग्रामों का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है जो कि इतिहास की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है।

**कादम्बरी**

जहाँ हर्षचरित आख्यायिका के लिए आदर्शरूप है वहाँ गद्यकाव्य कादम्बरी कथा के रूप में। बाण के ही शब्दों में इस कथा ने पूर्ववर्ती दो कथाओं का अतिक्रमण किया है। **अलब्धवैदग्ध्यविलासमुग्धया धिया निबद्धेय-मतिद्वयी कथा-कदम्बरी।** सम्भवतः ये कथाएँ गुणाढ्य की बृहत्कथा एवं सुबन्धु की वासवदत्ता थीं। कादम्बरी की कथा संक्षेप में इस प्रकार है-

विदिशा के राजा शूद्रक की सभा में एक चाण्डाल कन्या एक शुक को लाई जिसके पूर्व जन्म के वृतान्त का उद्घाटन जावसि ऋषि ने अपनी कथा में किया है।

उज्जयिनी में तारापीड नाम का एक राजा था जिसका शुकनास नाम का एक बुद्धिमान मंत्री था। राजा को चन्द्रापीड नाम के एक पुत्र की प्राप्ति हुई और मंत्री के पुत्र का नाम वैशम्पायन था। दिग्विजय के प्रसंग में चन्द्रापीड एक सुन्दर अच्छोदसरोवर पर पहुँचा जहाँ असमय में दिवंगत प्रेमी पुण्डरीक की प्रतीक्षा करती हुई कामपीड़ित कुमारी महाश्वेता नाम की एक सुन्दरी उसे मिली। महाश्वेता ने अपनी सखी कादम्बरी के विषय में चन्द्रापीड को बताया और उसके कादम्बरी के पास ले गयी। प्रथम दर्शन से ही कादम्बरी और चन्द्रापीड का प्रेम हो गया। तभी चन्द्रापीड के पिता ने उसे वापिस बुलाया और अपनी पत्रलेखा नाम की परिचारिका को कादम्बरी के पास छोड़कर चन्द्रापीड वापस आ गया। पत्रलेखा ने भी कादम्बरी-विषयक

सूचना को भेजते हुए चन्द्रापीड को प्रसन्न रखा। बाण की कृति यहाँ समाप्त हो जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि बाण इस कृति को सम्पूर्ण किए बिना ही दिवंगत हुए जैसा कि उनके पुत्र ने कहा है-

**याते दिवं पितरि तद्वचसैव सार्ध**
**विच्छेदमाप भुवि यस्तु कथाप्रबन्धः।**
**दुःखं सतां यदसमाप्तिकृतं विलोक्य**
**प्रारण्य एव स मया न कवित्वदर्पात्।**

पुलिन्द अथवा भूषणभट्ट ने इस कथा को सम्पूर्ण किया।

जहाँ तक कथानक का सम्बन्ध है, बाणभट्ट बृहत्कथा के ऋणी हैं। सोमदेव द्वारा रचित बृहत्कथा के संस्कृत संस्करण में उपलब्ध सोमदेव एवं कमरन्द्रिका की कथा चन्द्रापीड एवं कादम्बरी की कथा से साम्य रखती हैं। परन्तु शुकनास का चरित्र-चित्रण वैशम्पायन तथा महाश्वेता की प्रेमकथा इत्यादि बाण की कल्पना है। कथानक के आविष्कार के लिए बाण को यश प्राप्त नहीं हुआ परन्तु उदात्त चरित्र-चित्रण, विविध वर्णन, मानवीय भावों के चित्रण तथा प्रकृति सौन्दर्य के कारण ही बाण को कवियों में उच्च स्थान की प्राप्ति हुई है।

**महाकवि बाणभट्ट की शैली**

एक विद्वान आलोचक के अनुसार विशेषणबहुल वाक्य रचना में, श्लेषमय अर्थों में तथा शब्दों के अप्रयुक्त अर्थों के प्रयोग में ही बाण का वैशिष्ट्य है। उनके गद्य में लालित्य है और लम्बे समासों में बल प्रदान करने की शक्ति है। वे श्लेष, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, सहोक्ति, परिसंख्या और विशेषतः विरोधाभास का बहुलता से प्रयोग करते हैं। जैसा कि अच्छोदसरोवर के उल्लेख से स्पष्ट है उनका प्रकृति वर्णन तथा अन्य प्रकार के वर्णन करने पर अधिकार है। कादम्बरी में शुकनास तथा हर्षचरित के प्रभाकरवर्धन की शिक्षाओं से बाण का मानव प्रकृति का गहन अध्ययन सुस्पष्ट है।

बाण की शब्दावली विस्तृत है और प्रायः वह एक शब्द के सभी पर्यायों का प्रयोग करते हैं। उन्होंने 'ध्वनि' के लिए 19 शब्दों का प्रयोग किया है। इसी प्रकार विशेषणों के प्रयोग में बाण निष्णात हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि विशेषणों का अन्त नहीं होगा। उनके वर्णन जैसे उज्जयिनी तथा दिवाकर मित्र के आश्रम का वर्णन विस्तृत होने पर भी निर्दोष, वैविध्यपूर्ण एवं प्रभावशाली हैं।

बाणभट्ट का मानव प्रकृति का ज्ञान आश्चर्यजनक है। उसका कोई भी तत्त्व अनुद्घाटित नहीं रहा। यह ठीक ही कहा गया है **'बाणोच्छिष्टं जगत सर्वम्'**। बाण ने किसी भी कथनीय बात को छोड़ा नहीं जिसके कारण कोई भी पश्चाद्वती लेखक बाण को अतिक्रांत न कर सका। कवि की सर्वतोमुखी प्रतिभा, व्यापक ज्ञान, अद्भुत वर्णन शैली और प्रत्येक वर्ण्य-विषय के सूक्ष्मातिसूक्ष्म वर्णन के आधार पर यह सुभाषित प्रचलित है कि बाण ने किसी वर्णन को अछूता नहीं छोड़ा है और उन्होंने जो कुछ कह दिया, उससे आगे कहने को बहुत कुछ शेष नहीं रह जाता।

बाण ने जितनी सुन्दरता, सहृदयता और सूक्ष्मदृष्टि से बाह्य प्रकृति का वर्णन किया है, उतनी ही गहराई से अन्तः प्रकृति और मनोभावों का विश्लेषण किया है। उनके वर्णन इतने व्यापक और सटीक होते हैं, कि पाठक को यह अनुभव होता है कि उन परिस्थितियों में वह भी ऐसा ही सोचता या करता। प्रातः काल वर्णन, सन्ध्यावर्णन, शूद्रकवर्णन, शुकवर्णन, चाण्डालकन्या वर्णन आदि में बाण ने वर्णन ही नहीं किया है, अपितु प्रत्येक वस्तु का सजीव चित्र उपस्थित कर दिया है। चन्द्रापीड को दिये गये शुकनासोपदेश में तो कवि की प्रतिभा का चरमोत्कर्ष परिलक्षित होता है। कवि की लेखनी भावोद्रेक में बहती हुई सी प्रतीत होती है। शुकनासोपदेश में ऐसा प्रतीत होता है मानो सरस्वती साक्षात मूर्तिमती होकर बोल रही है।

बाण के वर्णनों में भाव और भाषा का सामंजस्य, भावानुकूल भाषा का प्रयोग, अलंकारों का सुसंयत प्रयोग, भाषा में आरोह और अवरोह तथा लम्बी समासयुक्त पदावली के पश्चात् लघु पदावली आदि गुण विशेष रूप से प्राप्त होते हैं। प्रत्येक वर्णन में पहले विषय का सांगोपांग वर्णन मिलता है, बहुत समस्तपद मिलते हैं, तत्पश्चात् श्लेषमूलक उपमायें और उत्प्रेक्षाएँ, तदनन्तर विरोधाभास या परिसंख्या से समाप्ति। श्लेषमूलक उपमा प्रयोग, विरोधाभास और परिसंख्या के प्रयोगों में क्लिष्टता, दुर्बोधता और बौद्धिक परिश्रम अधिक है। कहीं-कहीं वर्णन इतने लम्बे हो गये हैं कि ढूँढ़ने पर भी क्रियापद मिलने कठिन हो जाते हैं। महाश्वेता-दर्शन में एक वाक्य 67 पंक्तियों का है और कादम्बरी दर्शन में तो एक वाक्य 72 पंक्तियों का हो गया है। विशेषण के विशेषणों की परम्परा इतनी लम्बी है कि मूल क्रिया लुप्त सी हो जाती है। ऐसे वर्णनों में वर्णन का स्वास्त्य रह जाता है, पर कथाप्रवाह पद-पद पर प्रतिहत हो जाता है।

बाण का भाव एवं कल्पना पर अद्वितीय अधिकार था। उसके वाक्यों की लम्बाई असाधारण होते हुए भी मनोरंजक तथा उत्कृष्ट है। बाण की कृतियों में भावों की समृद्धता एवं अभिव्यक्ति की प्रचुरता होने से वे सहृदयों के हृदयों पर प्रभाव डालती है वस्तुतः ठीक ही कहा गया है-

**''वाणी वाणी बभूव''।**

## दण्डी

यद्यपि दण्डी के काल एवं जीवन के विषय में उपलब्ध प्रामाणिक साम्री अपर्याप्त है तथापि निःसन्देह दण्डी को लेखक के रूप में पर्याप्त यश की उपलब्धि हुई। कहा गया है-

**जाते जगति वाल्मीकि कविरित्यभिधाभवत।**
**कवीति ततो व्यासे कवयः त्रयी दण्डिनी।।**

अर्थात् वाल्मीकि के उत्पन्न होने पर 'कवि' शब्द उपाधि रूप में संसार में प्रचलित हुआ। व्यास के होने पर 'दो कवि' और दण्डी के होने पर 'तीन कवि' हो गए।

## दण्डी का काल

बाणी और सुबन्धु की अपेक्षा दण्डी की सरल शैली होने के कारण दण्डी को पूर्ववर्ती कहा जाता है।

नवीं शताब्दी के अन्त तक लेखक के रूप में दण्डी के यश की स्थिरता उपलब्ध होती है क्योंकि शार्ङ्गधर पद्यति एवं सूक्तिमुक्तावली में उद्धृत राजशेखर की दण्डी-सम्बद्ध उल्लिखित प्रशस्ति इस प्रकार है-

**त्रयोऽग्न्यस्त्रयो वेदास्त्रयो देवास्त्रयो गुणाः।**
**त्रयोदण्डीप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः।।**

दण्डी के व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में अवन्तिसुन्दरी के प्राप्त होने के पूर्व बहुत कम ज्ञात था। यद्यपि अवन्तिसुन्दरी के कर्त्ता के विषय में मतैक्य नहीं है तथापि पांडुरंग वामन काणे तथा वी. राघवन जैसे विद्वानों के अनुसार यह दण्डी की ही कृति है। अवन्तिसुन्दरी कथा की भूमिका भाग के अनुसार दण्डी के पितामह दामोदर प्रसिद्ध कवि भारवि के मित्र थे जिन्होंने उसका परिचय चालुक्य सम्राट विष्णुवर्धन (615-635 ई.) से करवाया था। हमें ज्ञात है कि दामोदर गंगराज दुर्विनीत के मित्र थे जिनका काल 605-650 ई. माना जाता है। क्योंकि दण्डी दामोदर के पौत्र थे, अतः उनका काल 50 वर्ष बाद (665-683 ई.) में होने की सम्भावना है। यही काल दूसरे ज्ञात तथ्यों से भी साम्य रखता है। अवन्तिसुन्दरी में वाकाटक नरेश प्रवरसेन, कालिदास, सुबन्धु, बाण एवं मयूर का उल्लेख है जिससे सिद्ध होता है कि दण्डी का काल 650 ई. के पश्चात् रहा होगा। इससे दण्डी के काल के बाद की सीमा निर्धारित होती है। ऊपर की सीमा का निर्धारण काव्यादर्श पर आधारित नृपतुंग के कन्नड ग्रंथ 'कविराज मार्ग' (815-875 ई.) के आधार पर किया जा सकता है। पुनश्च, विज्जिका नाम की कवयित्री प्रायः उद्धृत निम्नलिखित श्लाकों में दण्डी का उल्लेख करती है–

**नीलोत्पलदलश्यामां विज्जिकां मामजानता।**
**वृथैव दण्डिना प्रोक्तं सर्वशुक्ला सरस्वती।।**

विज्जिका, पुलकेशिन् द्वितीय के ज्येष्ठ पुत्र महाराज चन्द्रादित्य की महारानी मानी जाती है और उसका उल्लेख शक संवत् (581-879) के नेरूर ताम्रलेख में मिलता है। यदि यह सत्य है तो दण्डी विज्जिका के कुछ पूर्व ही हुए। इससे सिद्ध होता है कि दण्डी की रचनाओं का काल लगभग 660-680 ईस्वी में रहा होगा।

## दण्डी की कृतियाँ

जैसा कि पहले कहा जा चुका है राजशेखर के ग्रन्थ से उद्धृत एक श्लोक के अनुसार दण्डी ने तीन ग्रन्थों की रचना की है। इनमें से दो दशकुमारचरित और काव्यदर्श हैं। तीसरे ग्रन्थ के विषय में बहुत अधिक मतभेद विद्यमान हैं। पिशेल मृच्छकटिक को दण्डी की कृति मानते हैं परन्तु इसमें कोई प्रमाण नहीं। इसी प्रकार छन्दोविरचित तथा कलापरिच्छेद भी दण्डी के ग्रन्थ नहीं माने जा सकते क्योंकि छन्दोविरचित में केवल

मात्र छन्दों का ही निर्देश है और कलापरिच्छेद सम्भवत: काव्यादर्श का ही एक अध्याय था। प्रो. काणे के अनुसार अवन्तिसुन्दरी दण्डी की तीसरी कृति मानी जा सकती है।

अगाशे ने काव्यादर्श के लेखक का गद्यकार दण्डी से तादात्म्य स्वीकार नहीं किया। यह सम्भव है कि काव्यशास्त्री दण्डी, गद्यकार दण्डी से भिन्न रहा हो। परन्तु यह बात भी असम्भव नहीं है कि एक उसके यौवन की रचना हो और दूसरी प्रौढ़ अवस्था की।

**दशकुमारचरित**

दशकुमारचरित के हस्तलिखित तथा प्रकाशित संस्करणों में प्राय: तीन भाग हैं-(1) पूर्व पीठिक (2) दशकुमार चरित (3) उत्तरपीठिका (शेष)। इनमें से मध्यवर्ती अष्टमोच्छवासात्मक अंश ही दण्डी की वास्तविक कृति मानी जाती है। परन्तु क्योंकि इनमें राजवाहन की असम्पूर्ण कथा एवं सात मित्रें की कथाएँ हैं अत: वह असम्पूर्ण है। पूर्व पीठिका पाँच उच्छ्वासों में राजवाहन की बची हुई कथा तथा पुष्पोद्भव एवं सोमदत्त नामक दो कुमारों की कथा को भी देती है। और उत्तरपीठिका में दण्डी के द्वारा असम्पूर्ण छोड़ी गई विश्रुत चरित की कथा उपलब्ध होती है। भोज ने अपने सरस्वती कण्ठाभरण में पूर्वपीठिका का स्तुति श्लोक उद्धृत किया है। अत: यह भाग ग्यारहवीं शताब्दी ई- पूर्व ही जुड़ चुका होगा। उत्तरपीठिका के कई संस्करण हैं—एक चक्रपाणि का, दूसरा नारायण का, और कुछ भाग पद्मनाम के। क्योंकि मुख्य कथा में उल्लिखित बातों से पूर्वपीठिका एवं उत्तरपीठिका में कई स्थानों पर विरोध पाया है अत: पूर्वपीठिका तथा उत्तरपीठिका को पश्चाद्वर्ती सिद्ध करना सुगम है। उदाहरणत: मुख्य भाग में अर्थपाल तथा प्रमति कामपाल के पुत्र हैं जिनकी माताओं के नाम क्रमश: कान्तिमति तथा तारावली है, परन्तु पूर्व-पीठिका में अर्थपाल तारावली का पुत्र है और प्रमति सुमति नामक मंत्री का। इसी प्रकार मुख्य भाग में विश्रुत के पितामह का नाम सिन्धुदत्त है परन्तु पूर्वपीठिका में उनका नाम पद्मोद्भव है। पुनश्च मुख्य भाग में राजकुमार राजकुमारी के अनुज की सहायता से अन्त:पुर में प्रवेश पाता है परन्तु पूर्वपीठिका में एक सहकारी विद्याधर की सहायता से। इसी प्रकार ग्रन्थ में अनेक विरोध एवं विप्रतिपत्तियाँ विद्यमान हैं।

सुबन्धु एवं बाण से भिन्न, दण्डी ने कथा में काव्य की अलंकृत चमत्कृति का प्रदर्शन करने में अत्यधिक प्रयत्न किया है। दण्डी के गद्यकाव्यों का मुख्य उद्देश्य जीवन तथा यथार्थता का चित्रण करना है जो अन्य गद्यकाव्य में कहीं-कहीं उपलब्ध होता है।

एकाएक राजवाहन को एक बन्दी के रूप में प्रस्तुत करते हुए दशकुमार चरित की कथा प्रारम्भ होती है। चम्पा के अभियान में राजवाहन को अपने सब मित्र मिलते हैं जो अपनी 'साहसिक घटनाओं' का वर्णन करते हैं, दूसरे उच्छ्वास में समृद्ध घटनाओं एवं विविध पात्रें से युक्त उपहार वर्मा की कथा है। मारीचि नाम के ऋषि तथा वास्तु-पाल नाम के श्रेष्ठी का प्रवञ्चना बहुत रोचक है। नायक के द्यूतशाला में अनुभव तथा घरों में सेंध लगाना आदि हास्यपूर्ण घटनाएँ हैं। तीसरे उच्छ्वास में उपहार वर्मा की कथा है। उसने राज्यापहारी के मन पर अधिकार करके अपनी अद्भुत सौन्दर्य देने की शक्ति के विषय में सुझाया। इस प्रकार सौन्दर्यशक्ति

के बहाने से उनकी हत्या कर दी तथा अपने पिता के खोए हुए राज्य को वापस लिया। चतुर्थ उच्छ्वास में बतलाया गया है कि अर्थपाल ने अपने पिता के खोए मन्त्रिपद तथा मणिकार्णिका नामक राजकुमारी को प्राप्त किया। पंचम उच्छ्वास में प्रमति श्रावस्ती की राजकुमारी का पाणि-ग्रहण करता है। युवराज की यात्र के वर्णन में ग्राम्य तथा नागरिक जीवन का अनेक प्रकार का उल्लेख प्राप्त होता है। पष्ठ उच्छ्वास में मित्रगुप्त के द्वारा खुँह देश की राजकुमारी की प्राप्ति का वर्णन है। इसमें दण्डी ने समुद्र पर किये गये साहसों का वर्णन किया है। सप्तम उच्छ्वास में मित्रगुप्त के अनुभवों का वर्णन है।

अष्टम उच्छ्वास में विश्रुत के साहसिक कार्यो का वर्णन है जो विदर्भ देश के राजकुमार को उसका खोया हुआ राज्य दिलाता है। इसमें राजनीतिशास्त्र पर परिष्कृत व्यंग्य है। आनन्द एवं सुगम जीवन का सशक्त प्रतिपादन त्रुटिपूर्ण हेतु पर आधारित है। एकाएक प्रारम्भ के समान यहाँ कृति समाप्त हो जाती है।

दशकुमारचरित धूर्त्तता से पूर्ण काव्य कहा जाता है। द्युतक्रीड़ा, सेंध लगाना, चालाकी, धूर्त्तता, प्रवंचना, हिंसा, हत्या, जालसाजी, अपहरण एवं अवैध प्रेम एक-एक अथवा सामूहिक रूप में सब कथाओं में मिलते हैं। लेखक का समाज के प्रति व्यवहार अतीव सोपालम्भ है। ब्राह्मण, संन्यासी, राजा, राजकुमारियाँ एवं पवित्र साधुओं का उपहास किया गया है। देवताओं को भी नहीं छोड़ा गया। परन्तु इसका उद्देश्य अनैतिकता का समर्थन करना नहीं है। लोगों की मिथ्या मान्यताओं का विश्लेषण करके समाज के सम्मुख प्रस्तुत करना ही इनका मुख्य उद्देश्य है।

दण्डी का चरित्र-चित्रण बहुत प्रभावशाली है। उन्होंने मारीचि ऋषि, गणिका काममंजरी, तथा धात्री शृंगालिका तथा सिपाहियों के अफसर कान्तक के जीवन चित्र प्रदर्शित किए हैं। कवि द्वारा प्रस्तुत मनोरंजन स्थितियों में हास्य एवं व्यंग्य अभिव्याप्त हैं। निस्सन्देह दण्डी का भाषा पर अधिकार है परन्तु वह बढ़ा चढ़ाकर वस्तुओं का वर्णन नहीं करते और अपनी काव्यकला की प्रौढ़ता का सूक्ष्म दृष्टि से प्रदर्शन कर पाठक के हृदय पर प्रभाव डालते हैं। संस्कृत आलोचक उनके उत्कृष्ट शब्द सौन्दर्य की सराहना करते हैं। विद्वानों में यह प्रसिद्ध उक्ति प्रचलित है 'दण्डिनः पदलालित्यम्' और इसके दण्डी अधिकारी भी हैं। अनुप्रास के ललित प्रयोग से दण्डी मनोरंजक ध्वनि प्रभाव को उत्पन्न करते हैं। वे लम्बे समासों का प्रयोग करते हैं परन्तु अर्थ की व्यक्ति में अस्पष्टता नहीं आने देते। उनके वर्णन प्रभावशाली एवं हृदयग्राही होते हैं परन्तु वे पाठक के हृदय को आकर्षित किये रखते हैं क्योंकि उनके अलंकारों के प्रयोग एवं वर्णनीय विषय में एक कलात्मक सन्तुलन रहता है। दण्डी के पदलालित्य के उदाहरण रूप प्रस्तुत हैं–

**अथ संगतगीतसंगीतं-संउतांगना सहस्रशृंगार हेला–**

**निरगानंगसंघर्षहर्षितैः।**

**अथवा**

**नीलनीरदनिकरपीवरतमोनिविडितायां राजवीथ्याम्**

इस प्रकार के उदाहरण प्रायः प्राचुर्य से मिलते हैं और 'दण्डिनः पदलालित्यम्' की उक्ति को सिद्ध करते हैं। दण्डी का पदलालित्य गौरव का विषय है। उनकी भाषा में सुकुमारता, परिष्कार प्रांजलता, प्रसाद और माधुर्य गुण प्राप्त होते हैं। दशकुमारचरित पढ़ने पर पाठक को यह अनुभूति होती है कि वह कुछ सरस रचना का रसास्वाद कर रहा है। जीवन की अनुभूतियाँ आँखों के समक्ष उतर आती हैं। और वह कवि को अपना एक अतरंग मित्र सा अनुभव करता है। दण्डी के गद्य में न तो सुबन्धु के तुल्य 'प्रत्यक्षरश्लेष' की योजना है और न बाण के सदृश 'सरसस्यरवर्णपद' की कृत्रिमता। उसमें दैनिक व्यवहार की प्रवाहशील भाषा है। छोटे-छोटे पद और वाक्य नवशिशुओं के समान क्रीड़ा करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं और वे सहसा हृदय को आकृष्ट कर लेते हैं। कथाओं और उपन्यासों में प्रयुक्त मनीश शैली का इसमें अंतर्भाव दीखता है। भाषा की सरसता, मधुरता और सहज सुन्दरता नीरस में भी सरसता का आभास कर देती है।

राजा राजहंस और उनकी पत्नी बसुमती के वर्णन में पदलालित्य और माधुर्य दर्शनीय है:

''अनवरतयागदक्षिणारक्षितशिष्टविशिष्टविद्यासंभारभासुर-भूसुर निकर----------

राज हंसी नाम धनदर्पकन्दर्पसौन्दर्यसौदर्यहृद्यनिरवद्य-रूपो भूपो बभूव। तस्य वसुमती नाम सुमती लीलावतीकुलशेखरमणी रमणी बभूव''। (पूर्व उच्छ्वास 1)

**पश्चाद्वर्ती गद्यकाव्य**

सुबन्धु एवं बाण की कृतियाँ पश्चाद्वर्ती गद्य लेखकों के लिए आदर्श रूप में प्रस्तुत हुई। पश्चाद्वर्ती लेखकों में निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं–धारा के सम्राट मुंज और भोज के सभापंडित **धनपाल** ने दसवीं शताब्दी में 'तिलकमंजरी' की रचना की। यह कादम्बरी को आदर्श मानकर लिखी गई है। यद्यपि धनपाल की कृति में भाषा एवं शैली के अलंकरण उपस्थित हैं तथापि उसमें बाण के काव्यात्मक गुणों का अभाव है।

ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में **जैन उदयदेव वादीभसिंह** ने 'गद्यचिन्तमामणि' की रचना की। गुणमद्र के उत्तर पुराण में उपलब्ध जीवन्धर की गाथा पर यह आधारित है। यह शैली के प्रयोग में लगभग बाण का अनुकरण है।

**वामनभट्टबाण** ने रेड्डी सम्राट वीरनारायण के प्रशस्तिभूत 'वेमभपालचरित' नामक ग्रन्थ की रचना की। वह बाणरचित हर्षचरित से स्पष्ट रूप में प्रभावित हुआ परन्तु बाण के कवित्व के सौन्दर्य को प्राप्त करने में सफल न हुआ।

**सोड्ढल** की 'उदयसुन्दरीकथा' जो कभी चम्पूकाव्य भी माना जाता था, बाण की शैली को अपना कर लिखी गई है। उसके वर्णन विस्तृत हैं और भाषा तथा अलंकार के प्रयोग करने में कवि का अधिकार है। परन्तु वास्तविक काव्य का सौन्दर्य उपलब्ध नहीं होता। सोड्ढल को लाटाधिपति वत्सराज (1026-1050 ई.) का राजाश्रय प्राप्त था।

पश्चाद्वर्ती गद्यकाव्यकारों में अम्बिकादत्त व्यास अग्रगण्य हैं अत: व्यास का परिचय इस प्रकार है–

## अम्बिकादत्त व्यास

संस्कृत वाङ्मय के आधुनिक गद्यकारों में पण्डित अम्बिकादत्त व्यास का स्थान सर्वोपरि माना जाता है। व्यास जी ने स्वरचित पुस्तक 'विहारी विहार' के अन्त में संक्षिप्त निजवृत्तान्त वर्णित किया है, तदनुसार इनके पूर्वज राजस्थान में जयपुर से लगभग ग्यारह कोस दूर स्थित 'मानपुर' नामक गाँव के मूल निवासी थे। इनका वंश गौड़ एवं पराशरगोत्रीय था। श्री व्यास के पितामह पण्डित राजाराम एक प्रसिद्ध ज्योतिषी थे। वे देशाटन एवं तीर्थयात्रा में विशेष रुचि रखते थे। भ्रमण के इसी क्रम में वे काशी पहुँचे और कुछ समय पश्चात् अपने पैतृक ग्राम 'मानपुर' को छोड़कर विद्याध्ययन एवं अर्थोपार्जन हेतु काशी में ही बस गए। किन्तु उनके परिवार के वैवाहिक सम्बन्ध राजस्थान में ही सम्पन्न होते थे। पं. व्यास के पिता का नाम पंडित दुर्गादत्त व्यास था, जो संस्कृत एवं हिन्दी के उद्भट लेखक, कथावाचक तथा व्यवहारकुशल व्यक्ति थे। ये विद्वत्समाज में दत्तकवि के नाम से जाने जाते थे तथा विशेष ख्यातिप्राप्त थे। पं. दुर्गादत्त का जयपुर तथा काशी दोनों स्थानों पर समान रूप से आना-जाना रहता था।

### अम्बिकादत्त व्यास का काल

आधुनिक युग के इस प्रतिभासम्पन्न कवि का जन्म जयपुर नगर में चैत्र मास की शुक्ल अष्टमी ईसवी सन् 1848 में हुआ। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा पिता के सान्निध्य में सम्पन्न हुई। बाल्यकाल में ही इन्हें शब्द–धातुरूप, व्यावहारिक संस्कृत शब्द एवं अमरकोष जैसे ग्रन्थ कण्ठस्थ करवा दिए गए थे। इसके अतिरिक्त इन्होंने व्याकरण, काव्यशास्त्र, दर्शन, ज्योतिष तथा आयुर्वेद आदि अनेक शास्त्रों तथा बंगला, अंग्रेजी एवं हिन्दी भाषाओं का अध्ययन गुरुजनों के सान्निध्य में किया। अपने पूर्वजों के समान अम्बिकादत्त व्यास को भी जन्म से ही विद्वता के संस्कार प्राप्त थे। अत: बाल्यावस्था से ही इन्होंने काव्य-रचना प्रारम्भ कर दी थी। व्यास हिन्दी साहित्य के युग-प्रवर्तक कविवर श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समकालिक थे।

अम्बिकादत्त व्यास का व्यक्तिगत जीवन अत्यन्त कष्टप्रद रहा। 11 वर्ष की अल्पायु में इनकी माता का तथा उसके छ: वर्ष पश्चात् पिता का देहान्त हो गया था। इन्होंने 1880 ई. में संस्कृत महाविद्यालय से साहित्याचार्य की उपाधि प्राप्त की। सभी विषम परिस्थितियों में संघर्षरत रहते हुए भी व्यास जी निरन्तर अध्ययन-अध्यापन एवं लेखन कार्य में तत्पर रहते थे। काव्य-रचना में इतने अभ्यस्त थे कि एक घटी अर्थात् 24 मिनट में सौ श्लोकों की रचना करने की विलक्षण प्रतिभा के कारण काशी ब्रह्मामृतवर्षिणी सभा ने 1881 ई. में इन्हें 'घटिकाशतक' की उपाधि प्रदान की। 1883 ई. से 1899 ई. पर्यन्त अनेक विद्यालयों क्रमश: मधुबनी, मुजफ्फरपुर, भागलपुर तथा छपरा में इन्होंने संस्कृत अध्यापक के रूप में कार्य किया। तदुपरान्त 1899 ई. में पटना महाविद्यालय में प्रोफेसर के पद पर नियुक्त हुए। किन्तु उदर रोग के कारण ऐसे प्रतिभासम्पन्न महाकवि का 42 वर्ष की अल्पायु में अर्थात् 1900 ई. में देहान्त हो गया।

## रचनाएँ

व्यास ने 42 वर्ष की आयु में ही विविध साहित्य यथा गद्य, पद्य, दर्शन, गणित, कौतुक, रत्नविज्ञान आदि अनेक विषयों पर लगभग 80 रचनाओं का संस्कृत तथा हिन्दी भाषाओं में प्रणयन किया। इनकी रचनाओं में 'शिवराजविजय' (उपन्यास), सामवतम् (नाटक), गुप्ताशुद्धि-प्रदर्शनम्, अबोधनिवारण तथा विहारी विहार (हिन्दी काव्य) प्रमुख हैं। इनके द्वारा प्रणीत 'सामवतम्' नाटक भाषा एवं भाव-सौंदर्य की दृष्टि से प्रशंसनीय है। पं. व्यास द्वारा रचित सर्वप्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास 'शिवराज-विजय' इनकी सर्वोत्तम कृति है। इसी गद्यकाव्य की साहित्यिक उत्कृष्टता के कारण पं. अम्बिकादत्त व्यास को प्रमुख गद्यकारों में आदरपूर्वक गिना जाता है तथा इन्हें 'अभिनव बाण' भी कहा जाता है।

## शिवराजविजय

यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है, इसमें महाप्रतापी वीर शिवाजी के चरित्र एवं दिग्विजय का प्रभावपूर्ण चित्रण किया गया है। यह घटना प्रधान काव्य है। शिवाजी के चरित्र निबन्धन में व्यास ने देश-प्रेम की भावना को पुनः जागृत कर हिन्दुओं में देशभक्ति, स्वाभिमान, पराक्रम एवं मातृभूमि की सेवा-भावना का संचार किया। वर्णन के साथ-साथ घटनाओं में गतिशीलता है। अधिकांश घटनाएँ वास्तविक हैं। 'शिवराजविजय' में सम्पूर्ण कथानक तीन विरामों में विभक्त है तथा विराम चार-चार निश्वासों में। यद्यपि इसके कथानक में दो भिन्न कथाएँ स्वतन्त्र रूप से प्रवाहित होती हैं—एक के नायक शिवाजी हैं तो दूसरी कथा के नायक रघुवीरसिंह, तथापि व्यास जी ने अपने काव्य-कौशल से इन कथाओं को इस प्रकार वर्णित किया है कि वे एक-दूसरे की पूरक प्रतीत होती हैं। शिवराजविजय की कतिपय साहित्यिक विशेषताओं पर दृष्टिपात करना अनिवार्य है—

- शिवराजविजय वीररस प्रधान काव्य है, किन्तु प्रसङ्गवश अन्य रसों का भी समावेश है।
- अलङ्कारों का अत्यन्त स्वाभाविक रूप में प्रयोग हुआ है, अलङ्कारों के लिए कोई अतिरिक्त प्रयास नहीं किया गया है। अनुप्रास अलङ्कार का स्वाभाविक प्रयोग द्रष्टव्य है। यथा—**''मुने! विलक्षणोऽयं भगवान् सकल-कला-कलाप-कलनः सकल-कालन-करालः कालः।''**
- शिवराजविजय में पाञ्चाली रीति का प्रयोग सर्वत्र परिलक्षित होता है। भाषा-शैली में माधुर्य, प्रसाद एवं ओज तीनों गुणों का समन्वय दिखाई पड़ता है। जिसके फलस्वरूप भाषा सहज, सरल एवं प्रवाहपूर्ण है।
- संवाद-योजना सर्वत्र रोचक एवं मुहावरेदार भाषा में निबद्ध है, जिससे वर्णनों में निरसता का अभाव है। यथा—**दौवारिकः—आम्र! अग्रे कथ्यताम्।**

  **संन्यासी—वयं च संन्यासिनो वनेषु गिरिकन्दरेषु च विचारमः।**

  **दौवारिकः—स्यादेवम् ! अग्रे अग्रे ! इत्यादि।**

- पं. अम्बिकादत्त ने इस गद्यकाव्य में तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था का सफल चित्रण किया है। हिन्दुओं की दयनीय स्थिति तथा मुसलमानों की दमनकारी प्रवृत्तियों का यथार्थ चित्रण किया है। मुसलमानों के अत्याचारों से सम्बद्ध एक दृष्टान्त निम्न प्रकार से है–**''अद्य हि वेदा विच्छिद्य वीथीषु विक्षिप्यन्ते, धर्मशास्त्राण्युद्धूय धूमध्वजेषु ध्मायन्ते, पुराणानि पिष्ट्वा पानीयेषु पात्यन्ते.. ....क्वचिन्मन्दिराणि भिद्यन्ते।'' इत्यादि।**

# संस्कृत में नीतिकथा एवं लोककथा साहित्य : पंचतन्त्र, हितोपदेश, वेतालपंचविंशतिका, सिंहासनद्वात्रिंशिका, पुरुषपरीक्षा

विश्वसाहित्य में भारत के कथा-साहित्य का सर्वाधिक उत्कृष्ट स्थान है। कथा-साहित्य का उद्गम सर्वप्रथम भारतभूमि पर ही हुआ था और यहीं से विश्व के अन्य देशों में इसका प्रचार-प्रसार हुआ। संस्कृत कथा-साहित्य रोचक, सरल, भावपूर्ण एवं उपदेशपरक होने के कारण आबालवृद्ध सभी के मन को स्वत: आकर्षित तथा प्रभावित करता है। फलत: इस साहित्य की न केवल स्वदेशी अपितु विश्व के सभी प्रसिद्ध विद्वानों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। विश्व की प्राय: सभी भाषाओं में भारतीय कथाओं का अनुवाद भी किया गया है। ग्रीस की प्रसिद्ध 'ईसप कहानियाँ' तथा अरब की 'अरेबियन नाइट्स' जैसी रोचक कहानियाँ भारतीय कथा-साहित्य पर ही आधारित हैं। इन कथाओं की विषयवस्तु किसी पौराणिक अथवा ऐतिहासिक घटना से सम्बद्ध नहीं होती, अपितु विशुद्ध काल्पनिक होती हैं। ये कथाएँ कौतुहलयुक्त हास्य-विनोद एवं मनोरंजन के साथ-साथ नैतिक शिक्षा भी प्रदान करती हैं। किसी कारणवश शास्त्रीय ज्ञान से वंचित रह जाने वाले मनुष्य भी नीतिवान् एवं व्यावहारिक बन सकें, यही कथा-साहित्य का मुख्य उद्देश्य है।

## कथा-साहित्य का उद्भव-विकास

कथा-साहित्य का उद्भव वैदिक साहित्य से ही माना जा सकता है। पशु-पक्षियों के माध्यम से कर्त्तव्य-पालन एवं नीतिकथन की रीति संस्कृत में अत्यन्त प्राचीन है। ऋग्वेद में ऐसे कई आख्यान उपलब्ध हैं, जिनमें मनुष्येतर प्राणी मनुष्य को व्यवहारिक ज्ञान का उपदेश देते हैं। यथा सरमा-पणि संवाद सूक्त (ऋ. 10/108) में सरमा नामक शुनी (कुतिया) द्वारा पणियों (कंजूस व्यापारी) को धनादि दान करने का उपदेश दिया गया है। ऋग्वेद[1] में ही मन्त्रगान करते हुए ब्राह्मणों की तुलना मेंढकों से की गई है। पुरुरवा-उर्वशी-संवाद तथा विश्वामित्र-नदी-संवाद आदि सूक्तों में कथा-साहित्य के बीजरूप का निदर्शन होता है। इन कथाओं का विस्तार ब्राह्मण-ग्रन्थों में भी उपलब्ध होता है। छान्दोग्योपनिषद्[2] में एक व्यंग्य कथा वर्णित है जिसमें कुत्ते भोजन के लिए चिल्लाने वाला अपना एक नेता चुनते हैं। एक अन्य स्थल पर बैल, हंस तथा मद्गु नामक एक जलचर पक्षी द्वारा जाबाली-पुत्र सत्यकाम को ब्रह्मविद्या का उपदेश प्रदान किया गया है।

यद्यपि रामायण में उक्त कथाओं का संक्षिप्त वर्णन प्राप्त होता है। अनेक लघु-कथाएँ उपमाओं द्वारा भी संकेतित की गई हैं। परन्तु महाभारत में इन कथाओं का विस्तृत रूप प्राप्त होता है। महाभारत के शान्तिपर्व में विदुर द्वारा 'सोने के अण्डे देने वाले चिड़िया', 'धूर्त बिलाव', 'चतुर शृगाल', 'मनु-मत्स्य', 'गज-कच्छप' आदि अनेक नीति-कथाएँ कही गई हैं। जो नि:सन्देह कालान्तर में पंचतन्त्र की कथाओं का उपजीव्य

[1] ऋग्वेद; 7/103

[2] छान्दोग्य उपनिषद्; 1/12/2; 4/5, 7

(मूलस्रोत) बनी। पतंजलि ने महाभाष्य में 'काकतालीय', 'अजाकृपाणीय' एवं 'काकोलूकीयम्' आदि पदों द्वारा अनेक नीतिकथाओं का सांकेतिक उल्लेख किया है। बौद्ध जातक-कथाओं में लोककथा एवं नीतिकथाओं को ही भगवान् बुद्ध की शिक्षाओं के प्रचार-प्रसार का माध्यम बनाया गया है। आर्यशूर द्वारा रचित 'जातकमाला' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। संस्कृत भाषा में निबद्ध इस संग्रह में पैंतीस जातक कथाएँ हैं, जिनमें महात्मा बुद्ध के पूर्वजन्मगत कर्मों को कथारूप में रोचक विधि से प्रस्तुत कर मनुष्यमात्र को व्यावहारिक एवं नैतिक उपदेश दिए गए हैं। इन कथाओं में गद्य और पद्य का मिश्रित रूप प्राप्त होता है। बौद्धजातक कथाओं के आधार पर जैनाचार्यों ने भी जैन धर्म के प्रमुख तीर्थंकरों के पुनर्जन्म की कथाओं का चित्रण किया है। इन जातक कथाओं से तत्कालीन समाज, संस्कृति एवं आचार-व्यवहार का पर्याप्त परिचय प्राप्त होता है। हरिषेण कृत बृहत्कथाकोश में एक-एक जैन सिद्धान्त के लिए अनेक कथाएँ मिलती हैं। पंचतंत्र की कथाओं का जातक कथाओं से पर्याप्त साम्य है। अतः स्पष्ट है कि वैदिक युग से ईसवी सन् पर्यन्त भारतीय कथा-साहित्य का पर्याप्त विकास हो चुका था।

कथा-साहित्य को विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से मुख्य दो भागों में विभाजित किया जा सकता है–

(1) नीतिकथा, (2) लोककथा।

## (1) नीतिकथा

कोमल बुद्धि बालकों को धर्म, व्यवहार, सदाचार आदि नीतिगत संस्कार देने के लिए जो कथाएँ विकसित हुईं, उन्हें नीतिकथा कहते हैं। 'हितोपदेश' ग्रन्थ की प्रस्तावना में नारायण पण्डित ने नीतिकथाओं का उद्देश्य प्रतिपादित करते हुए कहा है कि इन कथाओं द्वारा बालकों को नीतिज्ञान दिया जाता है–''कथाच्छलेन बालानां नीतिस्तदिह कथ्यते।'' इन कथाओं में राजनीति, लोकनीति के गूढ़ तत्त्वों को सरल विधि से समझाया गया है। ये कथाएँ बालकों को व्यावहारिक जीवन जीना सिखाती हैं। बालोपयोगी बनाने हेतु इनके पात्र भी पशु-पक्षी आदि हैं, जो मनुष्य के समान आचरण करते हैं। ये पात्र राग-द्वेष, मित्रता-शत्रुता, मान-अपमान, छल-कपट, सन्धि-विग्रह आदि मानवीय भावनाओं से युक्त हैं। जन्तु-पात्रों में बुद्धिमत्ता, विनोदप्रियता, दयालुता एवं चंचलता आदि मानववत् व्यवहार देखकर बालकों के मन में स्वतः ही कौतूहल उत्पन्न होता है। परिणामस्वरूप वे राजनीति, सदाचार तथा लोकव्यवहार के गूढ़ तत्त्वों को सहजता से ग्रहण कर पाते हैं।

नीतिकथा ग्रन्थों में मानवजीवन हेतु आदर्शवाद की अपेक्षा व्यवहारकुशलता एवं नीतिज्ञान में निपुणता को श्रेष्ठ माना गया है। जीवन के अच्छे-बुरे दोनों पक्षों का चित्रण किया गया है। जिन विषयों को न जानने से असफलता अथवा निराशा का सामना करना पड़ता है, उन-उन विषयों के प्रति मनुष्यमात्र को नीतिकथाओं के माध्यम से जागरूक किया गया है।

**नीतिकथाओं में भाषा-शैली**

नीतिकथाओं की भाषा-शैली अत्यन्त सरल, बोधगम्य एवं आकर्षक होती है। भाषा में मुहावरे, लोकोक्तियों के प्रयोग से कहीं पर भी सहृदयी पाठक को नीरसता का अनुभव नहीं होता। नीतिकथाकारों को भी अपना पाण्डित्य-प्रदर्शन करने की अपेक्षा कथा को रोचक तथा प्रवाहपूर्ण बनाए रखना ही अभीष्ट रहा है। जिससे काव्यरस में कहीं भी व्यवधान दिखाई नहीं पड़ता।

इन नीतिकथाओं में सम्पूर्ण कथा गद्य में वर्णित होती है, परन्तु उनसे प्राप्त होने वाली शिक्षाएँ पद्य में होती हैं। पद्यात्मक नैतिक उपदेश प्रायः किसी कथन की पुष्टि के लिए पूर्ववर्ती नीतिग्रन्थों से संकलित किए गए हैं। नीतिकथाओं की एक अन्यतम विशिष्टता यह है कि इनमें एक मुख्य कथा के अन्तर्गत अनेक उपकथाओं का समावेश रहता है। ये उपकथाएँ व गौण कथाएँ मुख्य कथा के पात्रों द्वारा अपने सिद्धान्तों को स्पष्ट करने के लिए मुख्य कथा में जोड़ दी जाती हैं।

वस्तुतः नीतिकथाएँ मनोवैज्ञानिक शिक्षण का सर्वोत्तम निदर्शन हैं। संस्कृत साहित्य में दो प्रमुख नीति-कथात्मक ग्रन्थ हैं–(1) पंचतन्त्र, (2) हितोपदेश

## (1) पंचतन्त्र

''पंचतन्त्र'' नीति कथा-साहित्य का प्रतिनिधि स्वरूप, सबसे प्राचीन उपलब्ध ग्रन्थ है। पंचतन्त्र के कथामुख में वर्णित–

**''सकलार्थशास्त्रसारं जगति समालोक्य विष्णुशर्मेदम्!**
**तन्त्रैः पञ्चभिरेतच्चकार सुमनोहरं शास्त्रम्।।'' (कथामुख 3)**

इस श्लोक से यह ज्ञात होता है कि इसके रचयिता भी विष्णुशर्मा हैं। उनके शब्दों में, ''इस संसार में उपलब्ध सम्पूर्ण अर्थशास्त्र के निष्कर्ष की समालोचना कर मैंने (विष्णुशर्मा ने) पाँच तन्त्रों से युक्त इस मनोहर शास्त्र को बनाया है।''

'पंचतन्त्र' में श्री विष्णुशर्मा ने मंगलाचरण के उपरान्त कथामुख में पंचतन्त्र के उद्देश्य व स्वरूप का भी परिचय दिया है जिससे ज्ञात होता है कि दक्षिण देश में महिलारोप्य नामक नगर में सर्वगुण सम्पन्न अमरशक्ति नाम का राजा था। उसके बहुशक्ति, उग्रशक्ति और अनन्तशक्ति नाम के तीन पुत्र थे जो कि परममूर्ख थे। अपने पुत्रों को शास्त्रविमुख देखकर राजा चिन्तित हो गया और अपने मन्त्रियों से उनके बौद्धिक विकास के लिए कोई उपाय पूछने लगा। मन्त्रियों ने भी सोचा कि प्रत्येक शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करने में तो बहुत समय लगेगा इसलिए संक्षिप्त शास्त्र द्वारा ही ज्ञान दिया जाना चाहिए और उन्होंने राजा से कहा कि हमारे विद्वत् समाज में समस्त शास्त्रों में निपुण और छात्रों की मण्डली में यशस्वी विष्णुशर्मा नाम का एक ब्राह्मण है उसे इन पुत्रों को आप सौंप दें। वह अवश्य इनको ज्ञानवान् बना देगा। राजा ने यह बात सुनकर विष्णुशर्मा को बुलाकर कहा भगवन्! मुझ पर अनुग्रह करने के लिए आप मेरे इन पुत्रों को शीघ्र अर्थशास्त्र,

में जिस प्रकार हो सके उस प्रकार असाधारण विद्वान् बना दीजिए। इसके बदले में मैं आपको सौ गाँव का मालिक बना दूँगा। यह सुनकर राजा से विष्णुशर्मा ने कहा–राजन् मेरे सत्य वचन सुनिए। मैं सौ गाँव लेकर भी विद्या विक्रय नहीं करता। तथापि आपके इन पुत्रों को यदि छः महीने में नीतिशास्त्र का ज्ञाता न बना दूँ तो मैं अपना नाम त्याग दूँगा–**''पुनरेतांस्तव पुत्रान्मासष्ट्केन यदि नीतिशास्त्रज्ञान्न करोमि ततः स्वनामत्यागं करोमि।''**

बहुत कहने से क्या लाभ? आप मेरा सिंहनाद सुने। धन मिल जाने की अभिलाषा से मैं ऐसा नहीं कहता, क्योंकि अस्सी वर्ष की अवस्था तक सभी इच्छाओं से मुक्त हो गया हूँ अतः मुझे धन से कोई प्रयोजन नहीं है। किन्तु आपकी प्रार्थना सिद्धि के निमित्त मैं सरस्वती विनोद करूँगा अतः आप आज के दिन का नाम लिख लीजिए ''यदि मैं छः महीने के अन्दर आपके पुत्रों को विद्या में असाधारण ज्ञाता न बना दूँ तो भगवान मुझे स्वर्ग न दिखाएँ।''

तत्पश्चात् ब्राह्मण की इस प्रतिज्ञा को सुनकर राजा मन्त्रियों सहित अत्यधिक प्रसन्न और आश्चर्यचकित हुआ और उन राजकुमारों को आदर के साथ उनको सौंप कर राजा अत्यन्त संतुष्ट हुआ। विष्णुशर्मा ने भी उन कुमारों को ले जाकर उनके लिए मित्रभेद, मित्रसम्प्राप्ति, काकोलूकीय, लब्धप्रणाश और अपरीक्षिकारक नामक इन पाँच तन्त्रों की रचना कर उन्हें पढ़ाया। वे राजकुमार भी उन तन्त्रों को पढ़कर छः महीने में जैसा ब्राह्मण ने कहा था वैसे ही विशेष ज्ञानी हो गए। उसी दिन से यह पंचतन्त्र नामक नीतिशास्त्र का ग्रन्थ बालकों को ज्ञान प्राप्ति के लिए संसार में प्रसिद्ध हुआ और कहा गया है कि–

**''अधीते य इदं नित्यं नीतिशास्त्रं श्रश्णोति च।**
**न पराभवमाप्नोति शक्रादपि कदाचन।।**

अर्थात् जो इस नीतिशास्त्र का नित्य अध्ययन करता है अथवा सुनता है वह देवराज इन्द्र से भी कभी पराजित नहीं होता।

**पंचतन्त्र का रचना काल**–पंचतन्त्र की रचना किस काल में हुई? यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता क्योंकि पंचतन्त्र की मूल प्रति अभी तक उपलब्ध नहीं है। कुछ विद्वानों ने पंचतन्त्र के रचयिता एवं पंचतन्त्र की भाषा शैली के आधार इसके रचनाकाल के विषय में अपने मत प्रस्तुत किए हैं जैसे कि–

महामहोपाध्याय पं. सदाशिव शास्त्री के अनुसार पंचतन्त्र के रचयिता विष्णुशर्मा थे और विष्णुशर्मा चाणक्य का ही दूसरा नाम था। अतः पंचतन्त्र की रचना चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में ही हुई थी। फलतः इसका रचना काल 300 ई.पू. माना जा सकता है, पर पाश्चात्य तथा कुछ भारतीय विद्वान् ऐसा नहीं मानते। उनका कथन है कि चाणक्य का दूसरा नाम विष्णुगुप्त था विष्णुशर्मा नहीं तथा उपलब्ध पंचतन्त्र की भाषा की दृष्टि से तो यह गुप्तकालीन रचना प्रतीत होती है।

महामहोपाध्याय पं. दुर्गाप्रसाद शर्मा ने विष्णुशर्मा का समय अष्टमशतक के मध्य भाग में माना है क्योंकि पंचतन्त्र के प्रथम तन्त्र में आठवीं शताब्दी के दामोदर गुप्त द्वारा रचित कुट्टिनीमत की ''पर्यङ्कः स्वास्तरणम्'' इत्यादि आर्या देखी जाती है, अतः यदि विष्णुशर्मा पंचतन्त्र के रचयिता थे तो वे अष्टम शतक में हुए होंगे। परन्तु केवल उक्त श्लोक के आधार पर पंचतन्त्र की रचना अष्टम शतक में नहीं मानी जा सकती, क्योंकि यह श्लोक किसी संस्करण में प्रक्षिप्त भी हो सकता है।

हर्टेल और डा. कीथ, इसकी रचना 200 ई.पू. के बाद मानने के पक्ष में हैं।

चाणक्य के अर्थशास्त्र का प्रभाव भी पंचतन्त्र में दिखाई देता है इसके आधार पर भी यह कहा जा सकता है कि चाणक्य का समय लगभग चतुर्थ शताब्दी पूर्व का है अतः पंचतन्त्र की रचना तीसरी शताब्दी के पूर्व हुई होगी।

इस प्रकार पंचतन्त्र का रचनाकाल विषयक कोई भी मत पूर्णतया सर्वसम्मत नहीं है।

**संस्करण**–पंचतन्त्र के चार संस्करण उपलब्ध हैं–

- **प्रथम संस्करण** मूलग्रन्थ का पहलवी अनुवाद है जो अब सीरियन एवं अरबी अनुवादों के रूप में प्राप्त होता है।
- **द्वितीय संस्करण** के रूप में पंचतन्त्र गुणाढयकृत 'बृहत्कथा' में दिखाई पड़ता है। 'बृहत्कथा की रचना पैशाची भाषा में हुई थी किन्तु इसका मूलरूप नष्ट हो गया है और क्षेमेन्द्रकृत 'बृहत्कथा मंजरी' तथा सोमदेव लिखित 'कथासरित्सागर' उसी के अनुवाद हैं।
- **तृतीय संस्करण** में तन्त्राख्यायिका एवं उससे सम्बद्ध जैन कथाओं का संग्रह है। 'तन्त्राख्यायिका' को सर्वाधिक प्राचीन माना जाता है। इसका मूल स्थान काश्मीर है। प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् डा. हर्टेल ने अत्यन्त श्रम के साथ इसके प्रामाणिक संस्करण को खोज निकाला था। इनके अनुसार 'तन्त्राख्यायिका' या तन्त्राख्या नहीं पंचतन्त्र का मूलरूप है। यही आधुनिक युग का प्रचलित 'पंचतन्त्र' है।
- **चतुर्थ संस्करण** दक्षिणी 'पंचतन्त्र' का मूलरूप है तथा इसका प्रतिनिधित्व नेपाली 'पंचतन्त्र' एवं 'हितोपदेश' करते हैं।

इस प्रकार 'पंचतन्त्र' एक ग्रन्थ न होकर एक विशाल साहित्य का प्रतिनिधि है। विश्व-साहित्य में भी पंचतन्त्र का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसका कई विदेशी भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। इन अनुवादों में पहलवी भाषा का 'करटक दमनक' नाम का अनुवाद ही सबसे प्राचीन अनुवाद माना जाता है। विंटरनित्ज़ के अनुसार जर्मन साहित्य पर पंचतन्त्र का अधिक प्रभाव देखा जाता है। इसी प्रकार ग्रीक की ईसप् की कहानियों का तथा अरब की Arabian Nights आदि कथाओं का आधार पंचतन्त्र ही है। ऐसा माना जाता है कि पंचतन्त्र

का लगभग 50 विविध भाषाओं में अब तक अनुवाद हो चुका है और इसके लगभग 200 संस्करण भी हो चुके हैं। यही इसकी लोकप्रियता का परिचायक है।

**पंचतन्त्र का स्वरूप**–पंचतन्त्र में पाँच तन्त्र या विभाग हैं। (पंचानाम् तन्त्राणाम् समाहारः-द्विगुसमास) विभाग को तन्त्र इसलिए कहा गया है क्योंकि इनमें नैतिकतापूर्ण शासनविधि के तरीके बताए गए हैं। ये तन्त्र हैं–मित्रभेद, मित्रसम्प्राप्ति (मित्रलाभ), काकोलूकीयम् (सन्धि-विग्रह), लब्धप्रणाश एवं अपरीक्षितकारक।

संक्षेपतः इन तन्त्रों की विषय वस्तु इस प्रकार है–

**मित्रभेद**–नीतिकथाओं में, जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि एक मुख्य कथा होती है और उसको पुष्ट करने के लिए अनेक गौण कथाएँ होती हैं उसी प्रकार 'मित्रभेद' नामक इस प्रथम तन्त्र में अंगीकथा के रूप में पूर्व दक्षिण में महिलारोप्य के राजा अमरशक्ति की कथा दी गई है जिसमें यह बताया गया है कि वे अपने मूर्ख पुत्रों के कारण चिन्तित थे और इसलिए वे विष्णुशर्मा नामक विद्वान् को अपने पुत्रों को शिक्षित करने के लिए सौंप देते हैं। विष्णुशर्मा उन्हें छः मास में ही कथाओं के माध्यम से सुशिक्षित करने में सफल होते हैं। तत्पश्चात् मित्रभेद नामक भाग की अंगी-कथा में, एक दुष्ट सियार द्वारा पिंगलक नामक सिंह के साथ संजीवक नामक बैल की शत्रुता उत्पन्न कराने का वर्णन है जिसे सिंह ने आपत्ति से बचाया था और अपने दो मन्त्रियों–करकट और दमनक के विरोध करने पर भी उसे अपना मित्र बना लिया था। इस तन्त्र में अनेक प्रकार की शिक्षाएँ दी गई हैं जैसे कि धैर्य से व्यक्ति कठिन से कठिन परिस्थिति का भी सामना कर सकता है अतः प्रारब्ध के बिगड़ जाने पर भी धैर्य का त्याग नहीं करना चाहिए–

**''त्याज्यं न धैर्य विधुरेऽपि काले धैर्यात्कदाचित् गतिमाप्नुयात्सः'' (मित्रभेद, श्लोक 345)**

**मित्रसम्प्राप्ति**–इस तन्त्र में मित्र की प्राप्ति से कितना सुख एवं आनन्द प्राप्त होता है वह कपोतराज चित्रग्रीव की कथा के माध्यम से बताया गया है। विपत्ति में मित्र ही सहायता करता है–

**''सर्वेषामेव मर्त्यानां व्यसने समुपस्थिते।**
**वाङ्मात्रेणापि साहाय्यं मित्रादन्यो न संदधे।।**

**(मित्रसम्प्राप्ति श्लोक 12)**

ऐसा कहा गया है कि मित्र का घर में आना स्वर्ग से भी अधिक सुख देता है।

**सुहृदो भवने यस्य समागच्छन्ति नित्यशः।**
**चित्ते च तस्य सौख्यस्य न किञ्चित्प्रतिमं सुखम्।।**

**(मित्रसम्प्राप्ति श्लोक 18)**

इस प्रकार इस तन्त्र का उपदेश यह है कि उपयोगी मित्र ही बनाने चाहिए जिस प्रकार कौआ, कछुआ, हिरण और चूहा मित्रता के बल पर ही सुखी रहे।

**काकोलूकीय**–इसमें युद्ध और सन्धि का वर्णन करते हुए उल्लुओं की गुहा को कौओं द्वारा जला देने की कथा कही गयी है। इसमें यह बताया गया है कि स्वार्थ सिद्धि के लिए शत्रु को भी मित्र बना लेना

चाहिए और बाद में धोखा देकर उसे नष्ट कर देना चाहिए। इस तन्त्र में भी कौआ उल्लू से मित्रता कर लेता है और फिर बाद में उल्लू के किले में आग लगवा देता है। इसलिए शत्रुओं से सावधान रहना चाहिए क्योंकि जो मनुष्य आलस्य में पड़कर स्वच्छन्दता से बढ़ते हुए शत्रु और रोग की उपेक्षा करता है–उसे रोकने की चेष्टा नहीं करता वह क्रमशः उसी (शत्रु अथवा रोग) से मारा जाता है–

**य उपेक्षेत शत्रु स्वं प्रसरस्तं यदृच्छया।**
**रोग चाऽलस्यसंयुक्तः स शनैस्तेन हन्यते।।**

**(काकोलूकीय श्लोक 2)**

**लब्धप्रणाश**–इस तन्त्र में वानर और मगरमच्छ की मुख्य कथा है और अन्य अवान्तर कथाएँ हैं। इन कथाओं में यह बताया गया है कि लब्ध अर्थात् अभीष्ट की प्राप्ति होते-होते कैसे रह गई अर्थात् नष्ट हो गई। इसमें वानर और मगरमच्छ की कथा के माध्यम से शिक्षा दी गई है कि बुद्धिमान अपने बुद्धिबल से जीत जाता है और मूर्ख हाथ में आई हुई वस्तु से भी वंचित रह जाता है।

**अपरीक्षितकारक**–पंचतन्त्र के इस अन्तिम तन्त्र अर्थात् भाग में विशेषरूप से विचारपूर्वक सुपरीक्षित कार्य करने की नीति पर बल दिया है क्योंकि अच्छी तरह विचार किए बिना एवं भलीभांति देखे सुने बिना किसी कार्य को करने वाले व्यक्ति को कार्य में सफलता प्राप्त नहीं होती अपितु जीवन में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अतः अन्धानुकरण नहीं करना चाहिए। इस तन्त्र की मुख्य कथा में बिना सोचे समझे अन्धानुकरण करने वाले एक नाई की कथा है जिसको मणिभद्र नाम के सेठ का अनुकरण कर जैन-संन्यासियों के वध के दोष पर न्यायाधीशों द्वारा मृत्युदण्ड दिया गया। अतः बिना परीक्षा किए हुए नाई के समान अनुचित कार्य नहीं करना चाहिए–

**''कुदृष्टं कुपरिज्ञातं कुश्रुतं कुपरीक्षितम्।**
**तन्नरेण न कर्त्तव्यं नापितेनात्र यत् कृतम्।।**

**(अपरीक्षितकारक श्लोक-1)**

इसमें यह भी बताया है कि पूरी जानकारी के बिना भी कोई कार्य नहीं करना चाहिए क्योंकि बाद में पछताना पड़ता है जैसे कि ब्राह्मण पत्नी ने बिना कुछ देखे खून से लथपथ नेवले को यह सोचकर मार दिया कि इसने मेरे पुत्र को खा लिया है। वस्तुतः नेवले ने तो सांप से बच्चे की रक्षा करने के लिए सांप को मारा था जिससे उसका मुख खून से सना हुआ था। इसलिए कहा गया–

**अपरीक्ष्य न कर्त्तव्यं कर्त्तव्यं सुपरीक्षितम्।**
**पश्चात् भवति सन्तापो ब्राह्मण्या नकुले यथा।।**

**(अपरीक्षित कारक श्लोक-17)**

इस प्रकार पंचतन्त्र एक उपदेशपरक रचना है। इसमें लेखक ने अपनी व्यवहारकुशलता, राजनैतिकपटुता एवं ज्ञान का परिचय दिया है। नीति-कथाओं के मानवेतर पात्र प्रायः दो प्रकार के होते हैं, सजीव प्राणी तथा अचेतन पदार्थ। पंचतन्त्र में भी ये दो प्रकार के पात्र देखे जाते हैं–पशुओं में सिंह, व्याघ्र, श्रृंगाल, शशक, वृषभ आदि, पक्षियों में काक, उलूक, कपोत, मयूर, चटका, शुक आदि तथा इतर प्राणियों में सर्प, नकुल, पिपीलिका आदि। इनके अतिरिक्त नदी, समुद्र, वृक्ष, पर्वत, गुहा आदि भी अचेतन पात्र हैं, जिन पर कि मानवीय व्यवहारों का आरोप किया गया है। पंचतन्त्र में मानव को व्यवहार कुशल बनाने का प्रयास अत्यधिक सरल एवं रोचक शैली में किया गया है। पंचतन्त्र के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए डा. वासुदेव शरण अग्रवाल ने लिखा है कि–''पंचतन्त्र एक नीतिशास्त्र या नीतिग्रन्थ है–नीति का अर्थ जीवन में बुद्धिपूर्वक व्यवहार करना है, चतुरता और धूर्तता नहीं। नैतिक जीवन वह जीवन है जिसमें मनुष्य की समस्त शक्तियों और सम्भावनाओं का विकास हो अर्थात् एक ऐसे जीवन की प्राप्ति जिसमें आत्मरक्षा, धन-समृद्धि, सत्कर्म, मित्रता एवं विद्या की प्राप्ति हो सके और इनका इस प्रकार समन्वय किया गया हो कि जिससे आनंद की प्राप्ति हो सके, इसी प्रकार के जीवन की प्राप्ति के लिए, पंचतन्त्र में चतुर एवं बुद्धिमान पशु-पक्षियों के कार्य व्यवहारों से सम्बद्ध कहानियाँ ग्रंथित की गई हैं। पंचतन्त्र की परम्परा के अनुसार भी इसकी रचना एक राजा के उन्मार्गगामी पुत्रों की शिक्षा के लिए की गई है और लेखक इसमें पूर्ण सफल रहा है।

## (2) हितोपदेश

नीतिकथा साहित्य में पंचतन्त्र के पश्चात् सर्वाधिक प्रचलित ग्रन्थ 'हितोपदेश' है। वस्तुतः यह पंचतन्त्र का ही स्वतन्त्र संस्करण है, ऐसा विद्वानों का मत है। 'हितोपदेश' की रचना बंगाल के राजा धवलचन्द्र के आग्रह पर उनके आश्रित कवि नारायण पण्डित ने की। स्वयं लेखक का कथन है–

**श्रीमान् धवलचन्द्रोऽसौ जीयान्माण्डलिको रिपून्।**
**येनायं संग्रहो यत्नाल्लेखयित्वा प्रचारितः।।**

इस ग्रन्थ का प्रधान उद्देश्य सर्वजन हितकारी नैतिक उपदेशों को कथाओं के माध्यम से सरलतया समझाना है। यथा–**''कथाच्छलेन बालानां नीतिस्तदिह कथ्यते।''**

नारायण पण्डित ने 14वीं शताब्दी से पूर्व इस ग्रन्थ की रचना की है। चूँकि 1373 ई. में हितोपदेश की एक पाण्डुलिपि उपलब्ध होती है। हितोपदेश का आधार ग्रन्थ पंचतन्त्र है। ग्रन्थारम्भ में हितोपदेशकार ने स्वयं इसका उल्लेख किया है–**'पंचतन्त्रात्तथान्यस्माद् ग्रन्थादाकृष्य लिख्यते।'** यहाँ अन्य ग्रन्थ से तात्पर्य मुख्यतः कामन्दकी नीतिसार आदि ग्रन्थ स्वीकार किए जाते हैं; क्योंकि लेखक ने 'नीतिसार' से अनेक पद्यों को संकलित कर कथारूप में निबद्ध किया है।

**हितोपदेश की रूपरेखा एवं विषयवस्तु**–हितोपदेश में चार परिच्छेद हैं–मित्रलाभ, सुहृद्भेद, विग्रह और सन्धि। इसमें प्रस्ताविका कथा सहित कुल 43 कथाएँ हैं। जिनमें से 25 कथाएँ पंचतन्त्र से ही संकलित की गई हैं। कुछ कथाओं के सन्दर्भ महाभारत, शुकसप्तति एवं वेतालपञ्चविंशतिका में भी उपलब्ध होते हैं। 17

नवीन कथाएँ हैं, जो लेखक का मौलिक काव्य-कौशल है। हितोपदेश में 'पंचतन्त्र' की अपेक्षा अधिक पद्यों का प्रयोग हुआ है। इसमें प्रस्ताविका सहित कुल 726 पद्य हैं। जिनमें से अधिकांश पद्य महाभारत तथा कामन्दकी नीतिसार आदि ग्रन्थों से संगृहीत हैं। हितोपदेश के चार विभागों में बालोपयोगी नीति के चार उपायों–साम, दान, दण्ड और भेद को अत्यन्त सरलतापूर्वक कथा-रूप में वर्णित किया गया है। इनके वर्ण्य-विषयों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

- **प्रस्ताविका**–सर्वप्रथम प्रस्ताविका में पाटलिपुत्र के राजा सुदर्शन के चार मूर्ख पूत्रों को विष्णुशर्मा द्वारा नीतिज्ञान से सम्बद्ध उपदेश देने की कथा है।
- **मित्रलाभ**–इस परिच्छेद में काक, कूर्म, मृग और चूहे की कथाओं का वर्णन किया गया है।
- **सुहृदभेद**–इस परिच्छेद में शेर और वृष (बैल) की मित्रता को शृगाल द्वारा तोड़े जाने से सम्बद्ध कथा वर्णित है।
- **विग्रह**–'विग्रह' नामक परिच्छेद की मुख्य कथा हंसों एवं मयूरों (मोर) में परस्पर युद्ध से सम्बन्धित है।
- **सन्धि**–इस परिच्छेद में हंस तथा मयूर राजाओं के मध्य गीध व चकवे द्वारा परस्पर सन्धि स्थापित करने की कथा वर्णित है।

ऊपर वर्णित 'मित्रलाभ' एवं 'सुहृदभेद' ये दोनों परिच्छेद पंचतन्त्र के प्रथम दो तन्त्रों का क्रम परिवर्तित करके ज्यों के त्यों लिए गए हैं। नारायण पण्डित ने 'विग्रह' तथा 'सन्धि' की रचना भी पंचतन्त्र के तृतीय तथा पंचम् तन्त्रों 'काकोलूकीय' एवं 'अपरीक्षित कारक' के आधार पर की है। यद्यपि हितोपदेश का चतुर्थ परिच्छेद 'सन्धि' कवि की मौलिक रचना है तथापि कहीं-कहीं पंचतन्त्र की कथाओं का सम्मिश्रण प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ में पंचतन्त्र के 'लब्धप्रणाश' नामक तन्त्र का सर्वथा परित्याग किया गया है।

**हितोपदेश की भाषा-शैली**–हितोपदेश की भाषा सरल, सुबोध एवं रोचक है। इसकी कथाएँ बालकों के लिए शिक्षाप्रद हैं तथा श्लोक प्रायः उपदेशात्मक हैं। ग्रन्थ में सर्वत्र पंचतन्त्र की शैली का अनुसरण दृष्टिगत होता है। हितोपदेश की कथाओं का गद्य भाग अत्यन्त सरल एवं सुगमता से ग्रहण करने योग्य है। लघु-लघु वाक्यों का प्रयोग है। यथा-**तद् भवतां विनोदाय काककूर्मादीनां विचित्रां कथां कथयामि। राजपुत्रैरुक्तम् कथ्यताम्। विष्णुशर्मोवाच–श्रूयतां सम्प्रति मित्रलाभः, यस्यायमाद्यः श्लोकः।**

पंचतन्त्र की भाँति हितोपदेश में भी कथा गद्य में वर्णित है तथा इसमें निहित नैतिक उपदेश पद्य में है। ये पद्य अत्यन्त उपदेशपूर्ण एवं कण्ठस्थ करने योग्य हैं। इन पद्यों की सरलता एवं सरसता पाठक के मन को स्वतः ही आकृष्ट कर लेती है। जिसका दिग्दर्शन प्रस्तुत श्लोक में द्रष्टव्य है–

**माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।**
**न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा।।**

हितोपदेश में कर्तृवाच्य की अपेक्षा कर्मवाच्य अथवा भाववाच्य के प्रति कवि का विशेष प्रेम स्थान-स्थान पर दिखाई पड़ता है। कठिन धातुरूपों के प्रयोग से अनेक स्थलों पर उनकी भाषा अरोचक अवश्य हो गई है, प्रत्युत्त नारायण पण्डित ने अपनी इस रचना में नैतिकता का उच्चादर्श प्रस्तुत किया है। इनकी अद्‌भुत रचनाशैली का निदर्शन प्रस्तुत श्लोक में द्रष्टव्य है–

**संलापितानां मधुरैवचोभिर्मिथ्योपचारैश्च वशीकृतानाम्।**
**आशावतां श्रद्धाञ्च लोके किमर्थिनां वञ्चयितव्यमस्ति।।**

तात्पर्य यह है कि मीठे वचनों द्वारा किसी व्यक्ति के मन में आशा और विश्वास उत्पन्न करके उसके साथ कभी छल नहीं करना चाहिए।

कवि ने लोकहित की भावना से इस ग्रन्थ की रचना की है। इसी क्रम में (कर्म के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए) कवि कहते हैं कि मनुष्य के जीवन में भाग्य (दैव) एवं पुरुषार्थ (परिश्रम) दोनों का समानरूप से महत्त्व है क्योंकि जिस प्रकार एक चक्र से रथ की गति सम्भव नहीं, उसी प्रकार पुरुषार्थ के बिना भाग्य भी सिद्ध नहीं होता। अतः कर्म में लीन रहना ही मनुष्यमात्र का परम कर्त्तव्य है। यथा–

**यथा ह्येकेन चक्रेण न रथस्य गतिभवेत्।**
**एवं पुरुषकारेण विना दैवं न सिद्धयति।।**

मानवबुद्धि के विषय में एक स्थान पर कहा गया है कि जिस व्यक्ति में स्वयं की बुद्धि से काम लेने की सामर्थ्य नहीं है, उसका शास्त्र क्या कर सकते हैं अर्थात् कुछ नहीं कर सकते–

**यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा, शास्त्रं तस्य करोति किम्।**

मानव स्वभाव से सम्बद्ध अत्यन्त व्यावहारिक उपदेश कवि के माध्यम से निर्दिष्ट किया गया है कि जिसका जो स्वभाव है, वह कभी बदल नहीं सकता। चाहे उसके साथ कितना भी अच्छा व्यवहार क्यों न किया जाए। दूध पिलाने पर साँप का विष कम नहीं होता, अपितु बढ़ता ही है। इसी प्रकार अनेक उपदेश दिए जाने पर भी दुष्ट व्यक्ति शान्त नहीं होता, अपितु क्रोधित ही होता है–

**पयः पानं भुजङ्गानां केवलं विषवर्धनम्।**
**उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये।।**

हितोपदेश की भाषा इतनी सरल एवं रोचक है कि संस्कृत का साधारण ज्ञान रखने वाला व्यक्ति भी आसानी से इसका अध्ययन कर सकता है तथा इसमें निहित नैतिक शिक्षाओं को अपने जीवन में ग्रहण कर सकता है। पठन-पाठन की सुगमता के कारण भारत में पंचतन्त्र की अपेक्षा हितोपदेश सर्वाधिक लोकप्रिय रहा है। फलतः इसका अनुवाद बंगला भाषा के अतिरिक्त हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में भी किया जा चुका है।

## (2) लोककथा

प्रायः ऐतिहासिक सन्दर्भों से यह ज्ञात होता है कि संस्कृत वाङ्मय में कथासाहित्य का विकास दो दृष्टियों से हुआ है–नैतिक उपदेश एवं शुद्ध मनोरंजन। नैतिक एवं धार्मिक उपदेशपरक कथाएँ नीतिकथाएँ कहलाती हैं। इन कथाओं के पात्र प्रायः पशु-पक्षी होते हैं, परन्तु वे मानवगत भावों एवं विचारों को प्रदर्शित करते हैं। जबकि लोककथाएँ विशुद्ध मनोरंजनपरक होती हैं। इन कथाओं में पशु-पक्षियों की अपेक्षा मनुष्य जाति के पात्रों की बहुलता होती है। लोककथाओं में प्रायः कवि-कल्पित अद्भुत कथाएँ समाविष्ट होती हैं। अधिकांश लोककथाओं का उपजीव्य ग्रन्थ गुणाढ्य कृत बृहत्कथा है। स्वयं बृहत्कथा के भी तीन रूपान्तर उपलब्ध होते हैं–

(1) **बृहत्कथाश्लोकसंग्रह**–यह बृहत्कथा का सबसे प्राचीन रूपान्तर है। इसकी रचना नेपाल के बुद्धस्वामी ने 8वीं-9वीं शताब्दी में की थी। इस ग्रन्थ में 28 सर्ग तथा 4524 श्लोक उपलब्ध हैं, जो मूल ग्रन्थ का कुछ ही अंश माना जाता है। डॉ. कीथ ने इस ग्रन्थ को बृहत्कथा का विशुद्ध रूपान्तर माना है। इसकी भाषा-शैली सरल, सुबोध एवं प्रवाहयुक्त है।

(2) **बृहत्कथामंजरी**–इस ग्रन्थ की रचना आचार्य क्षेमेन्द्र ने 1037 ई. में की। ये कश्मीर के राजा अनन्त (1029-64 ई.) के आश्रित कवि थे। बृहत्कथामंजरी में 18 लम्बक तथा 7500 श्लोक है। यह बृहत्कथा का ही संक्षिप्त रूपान्तर है, किन्तु काव्य की दृष्टि से उच्चकोटि का ग्रन्थ माना गया है। कवि ने इस ग्रन्थ को अधिक रोचक एवं सरस बनाने के उद्देश्य से इसमें कुछ नवीन कथाओं का समावेश भी किया है।

(3) **कथासरित्सागर**–कश्मीर के राजा अनन्त के ही आश्रित कवि सोमदेव ने 1063 ई. से 1081 ई. के मध्य इस ग्रन्थ की रचना की। ये क्षेमेन्द्र के समकालीन ही थे। यह कथासाहित्य का शिरोमणि ग्रन्थ है तथा बृहत्कथा के विविध संस्कृत-संस्करणों में यह सर्वाधिक बृहद् एवं प्रसिद्ध माना जाता है। इस ग्रन्थ में 18 लम्बक हैं। ये 18 लम्बक कुल 124 तरंगों में विभक्त हैं। इसमें लगभग 24 हजार श्लोक हैं। सोमदेव ने कथासरित्सागर में तत्कालीन भारतीय समाज का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। उनकी शैली सरस, प्रवाहपूर्ण तथा प्रसादगुण सम्पन्न है।

लोककथाओं का मौलिक साहित्य प्रायः पैशाची प्राकृत अथवा प्राकृत भाषा में ही उपलब्ध होता है। बहुत बाद में इन कथाओं का संस्कृत भाषा में रूपान्तर किया गया है। अतः मुख्य लोककथा बृहत्कथा के उपर्युक्त तीन रूपान्तरों के अतिरिक्त भी संस्कृत वाङ्मय में अनेक लोककथाएँ उपलब्ध होती हैं जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

## वेतालपंचविंशतिका

वेतालपंचविंशतिका 25 रोचक लोककथाओं का एक सुन्दर तथा सुव्यवस्थित संग्रह है। इन कथाओं का मूल-रूप क्षेमेन्द्रकृत बृहत्कथामंजरी तथा सोमदेवकृत कथासरित्सागर में उपलब्ध होता है, किन्तु बुधस्वामी के बृहत्कथाश्लोकसंग्रह में नहीं मिलता। इस विषमता के फलस्वरूप कतिपय विद्वानों का मत है कि यह कथासंग्रह बृहत्कथा का अंश नहीं है, प्रत्युत यह एक स्वतन्त्र कथासंग्रह है, जिसका लोककथाओं के साथ पूर्णतया सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। इस कथासंग्रह को वेतालपच्चीसी तथा वेतालपंचविंशति नामों से भी जाना जाता है। वेतालपञ्चविंशतिका के निम्न संस्करण उपलब्ध होते हैं–

(1) **शिवदासकृत संस्करण**–शिवदास की यह कृति गद्य-पद्य दोनों में है। इस संस्करण में क्षेमेन्द्र-कृत बृहत्कथामंजरी के अनेक श्लोक प्राप्त होते हैं। कतिपय विद्वानों ने शिवदास का काल 12वीं शताब्दी निर्धारित किया है। किन्तु डॉ. हर्टेल का मानना है कि शिवदास ने 1487 ई. से पूर्व वेतालपञ्चविंशति की रचना की थी क्योंकि इसका प्राचीन हस्तलेख उसी समय उपलब्ध होता है। इस संस्करण में कथाओं का मूलस्वरूप गद्य-पद्यात्मक था अथवा केवल पद्यात्मक, इस विषय में पर्याप्त मतभेद है।

(2) **जम्भलदत्त कृत संस्करण**–यह संस्करण पूर्णत: गद्यात्मक है। इसमें उपदेशपरक पद्यों का भी सर्वथा अभाव है। इस संस्करण में उपलब्ध कथाएँ अन्य संस्करणों की कथाओं की तुलना में अधिक प्राचीन हैं। यह संस्करण रोमन लिपि में 'अंग्रेजी अनुवाद' सहित 1934 ई. में 'एमेनाउ' द्वारा अमेरिकन ओरियंटल सोसायटी से प्रकाशित करवाया गया है।

(3) **वल्लभदास कृत संस्करण**–यह संस्करण मूलग्रन्थ (वेतालपंचविंशतिका) का ही संक्षिप्त रूपान्तर है। अनेक आधुनिक भारतीय लोक-भाषाओं में इसका रूपान्तर अथवा भावानुवाद सर्वाधिक लोकप्रिय रहा। मंगोल भाषा में 'Ssiddi-Kur' (अलौकिक शक्तिशाली शव) के रूप में इसका रूपान्तर है।

(4) **क्षेमेन्द्र आधारित गद्य संस्करण**–वेतालपंचविंशतिका कथा का एक ऐसा संस्करण भी उपलब्ध होता है जो क्षेमेन्द्र कृत 'बृहत्कथामंजरी' पर आधारित गद्य-रूपान्तर मात्र है। यद्यपि इसके लेखक का नाम अज्ञात है।

### वेतालपंचविंशतिका की कथा

राजा त्रिविक्रमसेन अर्थात् विक्रमादित्य को एक सिद्धपुरुष प्रतिवर्ष एक रत्नगर्भित फल उपहार में देता है। कृतज्ञता के वशीभूत राजा विक्रमादित्य उस साधु से इसका कारण जानना चाहते हैं तो वह सिद्धपुरुष राजा से किसी सिद्धि में सहायता करने का वचन ले लेता है। सिद्धपुरुष राजा को एक पेड़ पर लटकते हुए शव को मौनवृत धारण किए हुए कन्धे पर लादकर लाने के लिए कहता है, जिसे राजा स्वीकार कर लेता है। इस शव पर एक वेताल (प्रेतात्मा) का आधिपत्य जानकर राजा आश्चर्यचकित हो जाता है, तो भी वह वचनबद्ध

था। मार्ग में वह वेताल राजा विक्रम को अनेक विचित्र कथाएँ सुनाता है और कथा के अन्त में एक पहेली परक प्रश्न पूछकर उसका उत्तर माँगता है। राजा द्वारा प्रश्न का उत्तर देने पर उसका मौनव्रत भंग हो जाता है और ऐसा होने पर शव पुनः पूर्वस्थान पर अर्थात् पुनः पेड़ पर लटक जाता है। इस प्रकार वेताल ने 24 कथाएँ राजा विक्रम को सुनाई तथा राजा द्वारा बार-बार प्रश्न का समाधान करने से मौनव्रत भंग होता रहता है, फलतः राजा का परिश्रम बार-बार विफल होता रहता है। अन्त में राजा हार मान लेता है और मौन ही रहता है। तब वेताल राजा को सिद्धपुरुष के वचन का रहस्य बतलाता है और स्वयं सिद्धि प्राप्त करने का उपाय भी बताता है।

इस प्रकार विविध प्रकार की 25 मनोरंजक कथाएँ वेताल द्वारा कही गई हैं। उदाहरणतया, एक कन्या का विवाह उसके तीन प्रेमियों में से किससे किया जाए, जबकि तीनों ने मिलकर उन कन्या को राक्षस के चंगुल से छुड़ाया था। राजा अपना निर्णय वीरता के पक्ष में देकर इस पहेली का समाधान करता है। इसी प्रकार कौतूहलयुक्त कथाएँ इस ग्रन्थ में वर्णित हैं।

**वेतालपंचविंशतिका की भाषा-शैली**—इस कथा-संग्रह की भाषा-शैली अत्यन्त सरल एवं रोचक है। प्रत्येक कथा अत्यन्त बुद्धिवर्धक, कौतुहलयुक्त एवं एक नवीन दृष्टि से सम्पन्न है। प्रत्येक कथा के अन्त में वेताल के प्रश्न जितने कठिन एवं विषम हैं, राजा के उत्तर भी उतने ही विद्वतापूर्ण, चातुर्ययुक्त तथा अनुभव-सम्पन्न हैं। शिवदास की काव्यशैली विशेष रूप से सरल और आकर्षक है। भाषा सर्वत्र सुबोध एवं लावण्यमयी है। श्लेष अलंकार का अत्यन्त अभाव है। उनका प्रतिभायुक्त, सुन्दर अनुप्रास अलंकार का एक प्रयोग द्रष्टव्य है—

**स धूर्जटिजटाजूटो जायतां विजयाय वः।**
**यत्रैकपलितभ्रान्तिं करोत्यद्यापि जाह्नवी।।**

'शिव की जटाओं का जूट तुम्हारे लिए विजयप्रदायक हो, जिनमें जाह्नवी (गङ्गा) आज भी एक श्वेत बाल की भ्रान्ति उत्पन्न करती है।

वस्तुतः वेतालपंचविंशतिका की कथाएँ इतनी उदात्त एवं प्रसिद्ध हैं कि विश्व की प्रायः सभी भाषाओं में इनका अनुवाद हुआ है। पञ्चतन्त्र की भाँति यह भी एक विश्व-साहित्य माना जाता है।

## सिंहासनद्वात्रिंशिका

इस कथासंग्रह को द्वात्रिंशत्पुत्तलिका, विक्रमचरित अथवा विक्रमार्कचरित भी कहा जाता है। इसमें सिंहासन में लगी 32 पुत्तलिकाओं की बत्तीस मनोरञ्जनात्मक कथाएँ वर्णित हैं। मूल कथा इस प्रकार है—सुना जाता है कि एक बार इन्द्र ने राजा विक्रमादित्य के पराक्रम से प्रसन्न होकर एक सिंहासन भेंटस्वरूप प्रदान किया था तथा राजा की मृत्यु के पश्चात् इसे भूमि में दबा दिया गया था। कालान्तर में धारा नगरी के राजा भोज को भूमि में दबा हुआ वह विक्रमादित्य का सिंहासन प्राप्त होता है, जिसमें बत्तीस पुत्तलियाँ लगी हुई

थीं। शुभमुहूर्त में जब राजा भोज स्वयं इस सिंहासन पर बैठने का प्रयास करते हैं तो पुत्तलियाँ राजा को रोकती हैं। तदनन्तर बद्ध आत्मायुक्त बत्तीस पुत्तलियाँ एक-एक करके उस महान राजा विक्रमादित्य के गुणों, उनकी वीरता एवं न्याय से सम्बद्ध कथाएँ सुनाकर यह सन्देश देती हैं कि केवल विक्रमादित्य के सदृश योग्यता एवं गुण-सम्पन्न व्यक्ति ही इस सिंहासन पर बैठ सकता है, अन्य नहीं। परिणामस्वरूप कथा सुनाकर सभी पुत्तलियों की आत्मा बन्धन-मुक्त हो जाती है। यद्यपि इस कथा-संग्रह में कहानियाँ अत्यन्त रोचक एवं मनोरञ्जक हैं, भाषा भी अत्यन्त सरल है तथापि इन कथाओं में बुद्धिचातुर्य का वैशिष्ट्य नहीं है, उदात्तभाव का भी सर्वथा अभाव है।

इस कथा-संग्रह की प्रत्येक कथा में राजा भोज का उल्लेख आता है। अतः सम्भवतः इसकी रचना राजा भोज (1015-1063 ई.) अर्थात् 11वीं शताब्दी के पश्चात् ही हुई होगी। इतना अवश्य है कि यह वेताल-पंचविंशतिका के बाद की रचना है। इस कथा-संग्रह के लेखक का नाम अज्ञात है।

विद्वानों के अनुसार सिंहासनद्वात्रिंशिका की उत्तरी एवं दक्षिणी दो वाचनिकाएँ उपलब्ध होती हैं, जिनमें पर्याप्त वैभिन्न्य है। पुनः उत्तरी वाचनिका के तीन संस्करण प्राप्त होते हैं-(1) 14वीं शताब्दी के एक जैनमुनि क्षेमंकर ने एक संस्करण की रचना की है, जिसकी कथा गद्यात्मक है और कथा के प्रारम्भ एवं अन्त में कुछ वर्णनात्मक पद्य हैं। (2) जैन मुनि क्षेमंकर के सस्करण पर ही आधारित एक बंगाली संस्करण उपलब्ध होता है, जिसका रचयिता 'वररुचि' नामक कवि माना जाता है। जो स्वयं किसी महाराष्ट्री संस्करण के आधार पर विरचित है। (3) एक अत्यन्त संक्षिप्त रूपान्तर उपलब्ध है जो केवल पद्यात्मक है। इन पद्यों में केवल नीतिपरक उपदेश ही वर्णित हैं।

दक्षिणी वाचनिका के भी दो रूप उपलब्ध होते हैं, जिनमें से एक गद्यात्मक है तथा दूसरा पद्यात्मक है। उत्तरी एवं दक्षिणी दोनों वाचनिकाओं में कौन-सी मूल तथा प्राचीन है, इस विषय में पर्याप्त मतभेद हैं। डॉ. हर्टेल के मतानुसार, जैन कवि क्षेमंकर कृत संस्करण मूलपाठ के निकट है। परन्तु डॉ. ऐडजर्टन की दृष्टि में दक्षिणी संस्करण अपेक्षाकृत अधिक मौलिक तथा प्राचीनतम है।

सिंहासनद्वात्रिंशिका में जिस प्रकार विक्रमादित्य के गुणों का वर्णन किया है, अन्य ग्रन्थों में भी इस प्रकार प्रशस्तिग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। यथा-**अनन्तकृत वीरचरित** (30 सर्ग), **शिवदासकृत शालिवाहनकथा** (गद्ययुक्त 18 सर्ग), **आनन्दकृत माधवानलकथा** (गद्यात्मक एवं संस्कृत-प्राकृत पद्ययुक्त), **विक्रमोदय** (लेखक अज्ञात), **पंचदण्डच्छत्र-प्रबन्ध** (जैन कवि, 15वीं शताब्दी) आदि।

## पुरुषपरीक्षा

पुरुषपरीक्षा गद्य-पद्य मिश्रित कथा-संग्रह है। इसमें 4 परिच्छेद हैं, जिनमें 44 नैतिक एवं राजनीतिपरक कथाएँ वर्णित हैं। इस कथा-संग्रह के रचयिता संस्कृत-मैथिली भाषाओं के उद्भट विद्वान् विद्यापति थे। इनका जन्म मिथिला नगर में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। जनश्रुति अनुसार विद्यापति मिथिला नरेश देवसिंह के पुत्र राजा शिवसिंह का सभापण्डित था। राजा शिवसिंह का राज्यशासन 1403 ई. का माना जाता है। फलतः

विद्यापति ने 14वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध अथवा 15वीं शताब्दी में ही सम्भवतः इस कथा-संग्रह की रचना की होगी। इनके पिता का नाम गणपति तथा पितामह का नाम जयदत्त कहा जाता है। विद्यापति की विद्या एवं कवित्त्व से प्रभावित होकर राजा शिवसिंह ने जरइल तप्पा में 'विरूपी' नामक ग्राम ताम्रपत्र पर अंकित कर विद्यापति को सौंपा था। इनके अन्य रचनाएँ गंगावाक्यावलि, दानवाक्यावलि, दुर्गाभक्ति तरंङ्गिणी, वर्षकृत्या, विभागसार, शैव सर्वस्वसार एवं कीर्तिलता हैं।

पुरुषपरीक्षा में मुख्य कथा एक राजा की है, जो अपनी कन्या के विवाह हेतु योग्य वर के विषय में एक ब्राह्मण से पूछते हैं। वह विद्वान् ब्राह्मण विभिन्न साधु-असाधु पुरुषों से सम्बद्ध 44 कथाएँ उस राजा को सुनाता है, जिनमें दानवीर, युद्धवीर, दयावीर, सत्यव्रती, चोर, भीरू, लोभी, अकर्मण्य आदि अनेक गुण एवं दोषयुक्त पुरुषों की कथाएँ हैं। प्रत्येक कथा का उद्देश्य 'पुरुष-विशेष' का लक्षण एवं निरूपण करना है। इस प्रकार सभी विधियों से विभिन्न पुरुषों की कथाओं द्वारा राजा को उपयुक्त वर-चयन करने का उपदेश दिया गया है। इस कथा-संग्रह की भाषा सरल न होने पर भी अत्यन्त रोचक एवं कौतूहलयुक्त है। कई स्थानों पर व्याकरण के अनुपयुक्त शब्दों का विशेष प्रयोग दृष्टिगत होता है। पुरुषपरीक्षा ग्रन्थ के अनेक रूपान्तर गुजराती, अंग्रेजी, बंगला, हिन्दी आदि भाषाओं में प्रकाशित हैं। रमानाथ झा ने मैथिली अनुवाद सहित मूलग्रन्थ का संस्करण पटना विश्वविद्यालय से 1960 ई. में प्रकाशित कराया था।